★ श्री हित चौरासी ★

(स्फुट वाणी और सेवक वाणी सहित)

सम्पादक
श्री ललिताचरण गोस्वामी

भूमिका लेखक
डा० विजयेन्द्र स्नातक
रीडर हिन्दी विभाग दिल्ली
विश्व विद्यालय दिल्ली

वितरक—
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, दिल्ली।

प्रकाशक
वेणु प्रकाशन
बड़ पाला मौहल्ला
वृन्दावन।

प्रथम संस्करण १०००
मूल्य ३ ५० न० पै०
अप्रैल, १९६२

मुद्रक
लोकसाहित्य प्रेस
मथुरा।

प्रकाशक का निवेदन !



वेणु-प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह तीसरा ग्रन्थ है। महाप्रभु श्री हित हरिवंश गोस्वामी रचित "हित चौरासी" एवं "स्फुट वाणी" अनेक बार प्रकाशित हो चुकी है किन्तु अभी तक इसका कोई सुसम्पादित संस्करण नहीं छपा था। आदरणीय श्री ललिताचरण जी गोस्वामी ने बड़े परिश्रम पूर्वक इस कार्य को सम्पन्न किया है और एक ऍन्वई कोष तैयार करदी है। विद्वद्वर डा० विजयेन्द्र स्नातक ने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर ग्रन्थ की उपयोगिता में वृद्धि की है। एतदर्थ हम उन दोनों महानुभावों के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

विद्या प्रकाशन की स्थापना सन् १६५६ में हुई थी। अब त
इस संस्था को राधावल्लभीय सम्प्रदाय के ग्रन्थों के प्रकाशन के लि
दो बार आर्थिक सहायता मिली है। श्री चम्पकलाल चुन्नीलाल बैंक
द्वारा शाह भोगीलाल मोहनलाल अहमदाबाद वालों की विधवा बा
कान्ती की ओर से एक हजार रुपये प्राप्त हुए हैं और अमृतसर वाले
श्री भगवानकुमारजी खेमका ने साढ़े बारहसौ रुपये प्रदान किये हैं जिसके
लिये हम उनके अतीव आभारी हैं।

हमें विश्वास है कि यदि ब्रजभाषा-भक्ति साहित्य के अनुरागियों द्वारा इसी प्रकार का बौद्धिक और आर्थिक सहयोग हमें मिलता रहा तो उक्त साहित्य से सम्बन्धित प्रामाणिक आलोचनात्मक ग्रन्थों के अभाव की पूर्ति बहुत कुछ अंशों में हो सकेगी।

—प्रकाशक

भूमिका

भारतवर्ष के इतिहास में जिस काल को मध्ययुग की संज्ञा दी गई है वह केवल राजनीतिक क्रान्तियों के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है परन् धार्मिक एवं साहित्यिक क्रान्ति का भी यह उल्लेख्य युग है। इस युग के धार्मिक क्षेत्र में भक्ति का जो प्रबल प्रवाह समस्त भारत में व्याप्त हुआ वह इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। धर्म और भक्ति की पावन विचारधाराओं को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया गया और अनायास ही इस युग में धर्म और साहित्य का मणिकांचन संयोग हो गया। धर्म और साहित्य दो पृथक तत्व न रह कर एक दूसरे में इतने अन्तर्भुक्त हो गये कि उनका पार्थक्य लुप्त-सा हो गया। उत्तर भारत में लोक भाषाओं के धरातल पर धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करने का उपक्रम हुआ तो दक्षिण भारत में संस्कृत को स्वीकार किया गया। भक्ति के क्षेत्र में निर्गुण और सगुण रूप से ईश्वरोपासना की विविध पद्धतियाँ प्रकाश में आई और ईश्वर के अवतारी रूप का सौन्दर्य राम और कृष्ण के दिव्य स्वरूप में सामने आया। इसी समय व्रजभूमि को नवजीवन प्राप्त हुआ। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व व्रजभूमि का जो रूप था वह परिवर्तित होने लगा और शनैः शनैः वृन्दावन धाम का महत्व भगवद्भक्तों की वाणी से प्रकट होकर जन साधारण के लिये प्राप्य और उपास्य बन गया। भौतिक वृन्दावन दिव्य वृन्दावन बना और भावना चरमो-त्कर्ष पर पहुँच कर पार्थिव और अपार्थिव के भेद को सर्वथा विस्मृत कर बैठी। महापुरुषों की अलौकिक वाणी से उस युग

वेणु प्रकाशन की स्थापना सन् १६५६ में हुई थी। अब तक इस संस्था को राधावल्लभीय सम्प्रदाय के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये दो बार आर्थिक सहायता मिली है। श्री चम्पकलाल चुन्नीलाल शंकर द्वारा शाह मोतीलाल मोहनलाल अहमदाबाद वालों की विधवा बाई कमली की ओर से एक हजार रुपये प्राप्त हुए हैं और अमृतसर वाले श्री अमरकुमारजी खेमका ने साढ़े बारहसौ रुपये प्रदान किये हैं जिसके लिये हम उनके अतीव आभारी हैं।

हमें विश्वास है कि यदि ब्रजभाषा-भक्ति साहित्य के अनुरागियों द्वारा इसी प्रकार का बौद्धिक और आर्थिक सहयोग हमें मिलता रहा तो उक्त साहित्य से सम्बन्धित प्रामाणिक आलोचनात्मक ग्रन्थों के अभाव की पूर्ति बहुत कुछ अंशों में हो सकेगी।

—प्रकाशक

भूमिका

भारतवर्ष के इतिहास में जिस काल को मध्ययुग की संज्ञा दी गई है वह केवल राजनीतिक क्रान्तियों के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है परन् धार्मिक एवं साहित्यिक क्रान्ति का भी वह उल्लेख्य काल है। उस युग के धार्मिक क्षेत्र में भक्ति का जो प्रबल प्रवाह समस्त भारत में व्याप्त हुआ वह इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। धर्म और भक्ति की पावन विचारधाराओं को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया गया और अनायास ही उस युग में धर्म और साहित्य का मणिकांचन संयोग हो गया। धर्म और साहित्य दो पृथक तत्व न रह कर एक दूसरे में इतने अन्तर्मुक्त हो गये कि उनका पार्थक्य लुप्त-सा हो गया। उत्तर भारत में लोक भाषाओं के धरातल पर धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करने का उपक्रम हुआ तो दक्षिण भारत में संस्कृत को स्वीकार किया गया। भक्ति के क्षेत्र में निर्गुण और सगुण रूप से ईश्वरोपासना की विविध पद्धतियाँ प्रकाश में आई और ईश्वर के अवतारी रूप का सौन्दर्य राम और कृष्ण के दिव्य स्वरूप में सामने आया। इसी समय व्रजभूमि को नवजीवन प्राप्त हुआ। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व व्रजभूमि का जो रूप था वह परिवर्तित होने लगा और शनैः शनैः वृन्दावन धाम का महत्व भगवद्भक्तों की वाणी से प्रकट होकर जन साधारण के लिये प्राप्य और उपास्य बन गया। भौतिक वृन्दावन दिव्य वृन्दावन बना और भावना चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर पार्थिव और अपार्थिव के भेद को सर्वथा विस्मृत कर बैठी। महापुरुषों की अलौकिक वाणी से उस युग

की महिमा मंडित कर प्रमुख अपने प्रखर तेजस्वी व्यक्तित्व का ही परिचय दिया है।

इसी युग में ब्रजमंडल में श्री गोस्वामी हितहरिवंशजी का पदार्पण हुआ। श्री हितहरिवंशजी के पूर्वज उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देववन्द कस्बे के निवासी थे। धार्मिक भावनाओं से वैष्णव मतावलम्बी होने पर भी उनकी मातृभाषा ब्रज नहीं थी। ब्रजभाषा उनकी अर्जित भाषा है किन्तु जिस प्रेरणा ने उन्हें ब्रजभूमि में आने को बाध्य किया था उसी ने उन्हें ब्रजभाषा को सर्वस्व रूप करने को भी विवश किया। ब्रजभूमि में आने के बाद गोस्वामी हित हरिवंशजी ने वृन्दावन धाम के चार सिद्ध केलि स्थलों का प्राकट्य किया और उन्हें भक्तों के लिए सुलभ बनाया। इन चार सिद्ध स्थलों में मानसरोवर, सेवाकुंज, रासमंडल और धीरसमीर आज भी वृन्दावन में प्रसिद्ध हैं। इन केलि-स्थलों के प्राकट्य से प्रतीत होता है कि श्री हित महाप्रभु को ब्रजभूमि की महिमा का आभास ही नहीं वरन् उसकी गाम्य गौरव-गरिमा का स्थूल रूप भी दिव्य प्रेरणा से विदित होगया था।

गोस्वामी हित हरिवंशजी ने अपनी धार्मिक मान्यताओं को प्रकट करने के लिए किसी सिद्धान्त-ग्रंथ की रचना नहीं की। कदाचित् शुष्क सिद्धान्त-वर्णन उनको कभी अभीष्ट नहीं रहा। वाद विवाद और नीरस तर्क वितर्क, जिसे दार्शनिक चिन्तन कहा जाता है, रस-भक्ति के माधुर्य का विघातक होता है अतः रस दर्शन में आस्था रखने वाले प्रेमीजनों का उसके प्रति आग्रह न होना स्वाभाविक ही है। ब्रह्म,जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में उन्होंने दार्शनिक धरातल पर जिज्ञासा व्यक्त नहीं की क्योंकि वे जानते थे कि इन गूढ़-गहन तत्वों का सर्व सम्मत स्वरूप कदापि निश्चित नहीं है और न अनन्त काल तक इनके स्वरूप

में एकमत्य सम्भव हो सकेगा। जैसे मुनियों स्वमत न मिसम के धर्म को समझने वाले मनीषी आचार्य हरिवंशजी ने इस प्रपंच से तटस्थ रहकर भक्ति के मूल तत्त्व प्रेम को अपनी वाणी का प्रतिपाद्य बनाया।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि विशाल काय ग्रंथों की रचना के अभाव में भी जीवन और जगत् के मधुरतम सम्बन्धों का सांगोपांग विवेचन श्री हित महाप्रभु ने अपनी सीमित वाणी में इतने मोहकरूप से प्रस्तुत किया जितने मोहक एवं सम्यरूप में उनसे पहले या उनके बाद भी कोई महापुरुष नहीं कर सका। यदि विश्व के विभिन्न मत-मतान्तरों के प्रवर्तकों के साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो 'हित चौरासी' के समान लघुकाय ग्रंथ शायद ही किसी धर्म-संस्थापक या प्रवर्तक का होगा। वेद, उपनिषद्, पुराण, दर्शन, स्मृति आदि की परम्परा एक ओर है तो दूसरी ओर धर्म संस्थापकों की कृतियाँ बाइबिल, कुरान, जिन्दावस्ता आदि हैं। मध्य युगीन संतों में कबीर, दादू, नानक, तुलसी, सूर आदि की रचनाएँ भी विशालाकार ही हैं। प्रेममार्ग को स्वीकार करने वाले निर्गुण सूफी सन्तों ने भी प्रबंध काव्य का व्यापक स्वरूप ग्रहण कर पद्मावत जैसे विशालकाय काव्यों की सृष्टि की है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'हित चौरासी' अपने कलेवर की लघु-सीमा में रहकर भी असीम प्रेम भावनाओं को प्रकट करने वाली अपनी तरह की एक मात्र रचना है। साम्प्रदायिक धरातल पर धर्म-ग्रंथ का सम्मान प्राप्त करने पर भी यह काव्य, भक्ति, प्रेम और समन्वय की भूमि पर अवस्थित साहित्यिक ग्रंथ है।

'हित चौरासी' जैसा कि मैंने ऊपर की पंक्तियों में लिखा है, श्री हित हरिवंश रचित चौरासी पदों का संग्रह है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का यह आधार स्तम्भ है। राधावल्लभीय भक्ति तत्व को हृदयंगम करने के लिए इस ग्रंथ को मूलाधार माना जाता है। चौरासी मुक्तक गेय पदों में श्री हित हरिवंशजी ने मूलतः अपनी मान्यताओं को व्यंजित करने का प्रयास किया है, यह लिखने में मुझे संकोच होता है क्योंकि चौरासी के पद व्यक्तिनिष्ठ मान्यता पर आधृत न होकर राधाकृष्ण भक्ति के मूल प्रेरक तत्वों पर पल्लवित हुए हैं। स्रष्टा के एक होने पर भी ये भाव और भावनाओं की अनेकता में समष्टि को मोहने वाले हैं। अतः मैं उन्हें व्यक्तिनिष्ठ एकान्तिक नहीं मानता। इन पदों को साम्प्रदायिक महत्व मुझे स्वीकार्य है किन्तु साम्प्रदायिक परिधि के बाहर मानव मन को भाव-विभोर करने की अद्भुत क्षमता देखकर मैं इन्हें सम्प्रदाय विशेष की सीमा तक आबद्ध करने का पक्षपाती नहीं हूँ। हित चौरासी के पद शृंगार, रति, मान और सुरत का वर्णन करने के साथ होली, बसन्त, शरद् और पावस के सुश्लोभन वर्णनों से भी परिपूर्ण हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से जो वर्गीकरण किया गया है वह हित चौरासी की व्यापकता को सीमित बनाने वाला है अतः मैं उस अन्तिम वर्गीकरण को नहीं मान सकता।

श्री हित हरिवंश गोस्वामी जी ने अपने सम्प्रदाय की स्थापना करते समय परम्परागत संकीर्णता के परित्याग के प्रति आग्रह प्रकट करके अपनी विचार-पद्धति की मौलिकता बड़ी निर्भीकता के साथ सामने रखी थी। प्रेम-सिद्धान्त की स्थापना में तत्सुखी भाव का आधार बनाते समय उनके मन में यही भाव था कि प्रेम-राज्य में प्रियतम के प्रति सब सुख समर्पित कर उसी के सुख का प्रमुख बनाया जाए। स्वसुख विवर्जित तत्सुखिता भाव की गुरुता और गम्भीरता पर विचार करने में विदित होता

है कि यह भाव समर्पण की पराकाष्ठा है। लौकिक प्रेम में, प्रेम करने वाला प्रेमी अपनी वृत्तियों के परितोष के लिए ही प्रेम के संसार में प्रविष्ट होता है। आत्म विसर्जन की सर्वोत्कृष्ट भावना तक वह उठ नहीं पाता किन्तु राधा वल्लभीय प्रेम मार्ग में 'जोई जोई प्यारो करै, सोई मोहि भावै।' की विचित्र प्रेम-परिपाटी स्थिर की गई है। हितजी की दृष्टि में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही उपास्य है और प्रेम मार्ग ही एक मात्र मार्ग है। इस प्रेम धर्म का आधार है अनन्यता। स्फुटवाणी के एक पद में श्री हरिवंश जी ने कहा है—"रहो कोउ काहू मनहिं दिये। मेरे प्राणनाथ श्री श्यामा सपथ करौं तृण छिये।" हितजी के शिष्यों ने भी अपनी वाणी में इस भाव को बहुत ऊँचे स्वर से मुखरित किया है।

प्रेम को भक्ति का मेरुदण्ड बना कर गोस्वामी हितहरिवंश जी ने इतना व्यापक और विशद बना दिया है कि उसकी परिधि में साधनपरक, विहार परक और व्यवहार परक प्रेम का समाहार हो जाता है। जागतिक प्रेम और कामवासना जन्य प्रेम से राधा विषयक प्रेम का व्यावर्तन करते हुए हित चौरासी में जो मार्ग सुझाया गया है वह सर्वथा नूतन और विकृतियों से रहित है। नित्य विहार की स्थिति में प्रेम ही काम्य होता है और यही नित्य विहार के चतुष्ट्य को संयुक्त करके विहार स्थिति सम्पादन करने में सहायक होता है। प्रेम की प्रत्येक दशा, प्रेमानन्द की मत्तता, प्रेमानुभूति के क्षण के समस्त कायिक एवं मानसिक आन्दोलन हित चौरासी में ग्रथित कर दिये गये हैं।

'हित चौरासी' रसभक्ति प्रतिपादन करने वाली सरस वाणी है जो अपने मन्तव्य को स्थापित करने में शास्त्र का सहारा नहीं लेता। शास्त्र-सम्मत वचन मर्यादा की कठोर भूमि पर अपराधित होते हैं, साधन सम्पन्नता उसकी अनिवार्यता है,

नियमों का शासन उसे सीमाबद्ध बनाए रखता है। साधन नियम मर्यादा और कर्मकाण्ड की कठोरता के कारण भक्त का हृदय सरस और स्निग्ध नहीं रहता। अतः श्रीहितजी ने अपने मार्ग में विधि निषेध की शास्त्रीय परम्पराओं को स्थान देना उचित नहीं समझा। नाभाजी ने अपने भक्तमाल में हितजी की इस विशेषता को यह स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है—"विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट प्रणधारी।" प्रियादासजी ने अपनी टीका में इस भाव को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—'विधि औ निषेध छेद डारे प्रान प्यारे हिये—।' वस्तुतः श्री हित महाप्रभु विधि और निषेध की शास्त्र मर्यादा से सर्वथा मुक्त थे। उनके प्राणनाथ उनके हृदय में बसते थे और उनके परितोष के लिए जो क्रिया करते थे, जो कि क्रीड़ा उन्हें अभिप्रेत लगती उसी का वर्णन करना वे अपना परम प्रिय कर्त्तव्य समझते थे।

श्री हित हरिवंशजी ने आराध्या राधा का वर्णन 'हित चौरासी' के पदों में अत्यधिक विभोर दशा में किया है। हृदय के जिस उत्कट उल्लास को वे राधा वर्णन के प्रसंग में जुटा पाते हैं, वह उनकी वाणी का सबसे अधिक उल्लसित रूप होता है। यों तो ब्रज मंडल के सभी वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की उपासना पर बल दिया गया है किन्तु हित जी के मत में 'रसोपैम' की चरमावधि भी कृष्ण से आगे बढ़कर राधा तक स्वीकार की गई है। राधा एक सामान्य गोपी न होकर रस की अधिष्ठातृ एवं रसमूर्ति हैं। उनके अंग अंग से उज्ज्वल प्रेमरस का तथा लावण्य पूर्ण पारमन्य सार का अम्बुधि प्रवाहित होता रहता है। राधा माधुर्य साम्राज्य की एक मात्र भूमि और रस की एक मात्र सीमा हैं। इनके पदनख की छटा की एक किरण से घनीभूत प्रेम-समुद्र की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है। इनकी करुण कृपा से

सृष्टि सुरक्षित होजाती है और सामाजिक समस्त वैभव ऐश्वर्य प्राकृत से होजाते हैं। जो भगवान श्रीकृष्ण शिव और ब्रह्मा द्वारा नमस्य हैं वे भी राधा के एक इशारे पर वनफूल चुनते हैं। 'जाहि विरंचि उमापति नाये, तापै तू वनफूल बिनाये। जो रस नेति नेति श्रुति भाख्यौ, ताकौ तैं अधर सुधारस चाख्यौ।' हितचौरासी में राधा का रूप, सौन्दर्य, शक्ति, शील और गुणों का वर्णन जिस दिव्य धरातल पर हुआ है उसे पढ़कर मन आनन्द के अलौकिक रस सागर में डूबने उतराने लगता है।

महाप्रभु श्री हितजी ने अपने पदों में 'नित्य विहार' का बड़े समारोह के साथ वर्णन किया है। नित्य विहार का स्वरूप श्री हित जी से पहले स्पष्ट नहीं था। जिन सम्प्रदायों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है उनमें इसकी 'विहार' व्याख्या नहीं मिलती। वस्तुतः हितजी ने ही अपने 'हित चौरासी' में इस नित्य विहार को सुव्यवस्थित रूप से अंकित किया है। नित्य विहार के साथ रासलीला का स्वरूप भी हित चौरासी के पदों में दृष्टिगत होता है। रासलीला का स्वरूप सैद्धान्तिक रूप से पदों में नहीं है किन्तु उसी के आधार पर राधा माधव के सौन्दर्य का वर्णन है। रासलीला का महत्व समझा जा सकता है।

विषय वस्तु का प्रतिपाद्य की दृष्टि से हित चौरासी में आये हुए कतिपय प्रमुख विषयों का मैंने ऊपर की पंक्तियों में संकेत करने की चेष्टा की है। मैं जानता हूँ कि इतने स्वल्प संकेतों से हित चौरासी को हृदयंगम नहीं किया जा सकता। उसके प्रत्येक पद पर पृथक पृथक विचार करने से ही इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ का रहस्य समझा जा सकता है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से विचार करने पर और बड़ा विस्मय सामने आता है और ब्रजभाषा के पाठक को विस्मित करता है कि यह हित चौरासी की

काव्य वस्तु पर समस्त दृष्टियोंसे विचार करें। किन्तु स्मरण रहे कि हित चौरासी भक्ति रस से आप्लावित मुक्तक पदों का संकलन है। श्री हित हरिवंशजी ने इन पदों की रचना काव्यशास्त्र की कसौटी सामने रखकर नहीं की थी किन्तु इस की उपेक्षा न करके उन्होंने माधुर्य-भक्ति काव्य रचकर भक्ति में प्रेम का सागर लहरायित किया था। काव्य की आत्मा रस है, हरिवंशजी की वाणी का मूल आधार रस ही है। काव्यरस सहृदयों के चित्त को चमत्कृत करता हुआ अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है तो हरिवंशजी की वाणी का रस भी रसिक भक्तों को प्रेम विह्वल करके आनन्द विभोर बना देता है।

काव्यानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर है, हरिवंशजी की वाणी का आनन्द साक्षात ब्रह्मानन्द का ही रूप है। काव्य के आलम्बन नायक-नायिका रति, हास, शोक आदि स्थायी भावों को उद्बुद्ध करने में सहायक होते हैं तो हरिवंशजी के काव्य के आलम्बन राधाकृष्ण रति को जागृत कर चित्त को शाश्वत शांति प्रदान करते हैं। भक्ति रस को स्वीकार करने वाले सभी भक्तों के मत में भक्ति काव्य का परम उद्देश्य दिव्य प्रेम-मार्ग से रसिक भक्तों को भवबंधन से मुक्त कर उस आनन्द लोक में ले जाना है जहाँ सांसारिक प्रपंच के बंधन छिन्न हो जाते हैं। भक्त के मन में एकान्त रूप चित्त राधाकृष्ण रति का अपार पारावार लहराने लगता है। उस अगाध और अपार पारावार में डूब पड़ने के बाद संसार-सागर के कूल-कूल किनारे विलीन हो जाते हैं, शास्त्रीय मर्यादायें टूट जाती हैं और भक्त का मन विशुद्ध परम चैतन्य में लीन होकर उस ब्रह्म का आनन्द उपलब्ध करने लगता है। 'हित चौरासी' के पदों के अनुशीलन से इसी कोटि के आनन्द

की सृष्टि भक्त के मन में होती है और मैं समझता हूँ यही हित चौरासी की सबसे बड़ी सार्थकता है।

हित चौरासी की अभिव्यञ्जना शैली पर भी इस प्रसंग में दो शब्द कहना मैं आवश्यक समझता हूँ। आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व जब मैंने पहली बार हित चौरासीके चार-पाँच पद पढ़े थे तभी से मेरे मनमें यह भाव जगा था कि इन पदों में भाषा की मार्जलता के साथ माधुर्य, लालित्य और प्रवाह का जैसा स्वच्छ-सुथरा रूप है वैसा ब्रजभाषा के किसी भक्त कवि की वाणी में नहीं है। मुझे यह कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं है कि ऐसा परिमार्जित रूप सूरदास और नन्ददास की भाषा में भी उपलब्ध नहीं होता। फलतः तभी से मैं हितजी की भाषा का प्रशंसक और समर्थक रहा हूँ। श्री हरिवंशजी ब्रज-भाषी नहीं थे। उनकी मातृभाषा ब्रज न होने पर भी उन्होंने ब्रज की प्रकृति को समझ पाया यह उनकी प्रतिभा का प्रमाण है। हाँ, संस्कृत भाषा के वे पंडित ही नहीं निसर्ग सिद्ध कवि भी थे। किन्तु उनकी कवि-प्रतिभा का रूप हमें संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी में ही अधिक मिलता है। हित चौरासी के पदों को पढ़ते ही भाषा की प्रेषणीयता और भाव ग्राहिणी कुशलता के कारण वर्ण्य विषय का चित्र मूर्तिमन्त हो नेत्रों के सामने आ खड़ा होता है। संस्कृत की सम्पन्न पदावली को ब्रजभाषा के सहज प्रवाह में ढालने की क्रिया में हरिवंश जी को अद्भुत क्षमता प्राप्त है। शब्द मैत्री, चित्रात्मकता, नाद सौन्दर्य, और संगीतात्मकता उनकी वाणी के उल्लेख्य गुण हैं जो भक्त कवियों में एकत्र दृष्टि-गत नहीं होते। संवेदन के स्वरूप को मूर्त रूप देकर जो पाठकों के अन्तर्नेत्रों के सामने लाने में समर्थ हो वही भाषा परिपूर्णता की कसौटी पर खरी मानी जाती है—हरिवंशजी की हित चौरासी

इसका निदर्शन है। हित चौरासी में तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है और दोनों का प्रभाव भी अलग-अलग देखा जा सकता है। शब्द मैत्री तो हरिवंशजी की वाणी का प्राण है। संस्कृत और ब्रज के सम्मिलन से मोहक वातावरण खड़ा करने की कला तो आपको सहज सिद्ध थी। 'कोमल किसलय शयन सुपेशल' और 'चित्र स कटिक विविध निर्मित घर' में तत्सम की छटा तथा 'निज भजन कनक तन जोवन' और 'आलस युत इतरात रँग मगे मये निसि जागर मलिन मलिन ही गों तद्भव की मनोहारी छटा किसे मुग्ध नहीं करती। हित चौरासी की संगीतात्मकता तो इसी से सिद्ध है कि गोस्वामी जी ने इसे राग बद्ध रूप में लिखा है। प्रत्येक पद किसी न किसी राग का अनुसरण करता है। संगीत और साहित्य का मणि काँचनयोग इसका वैशिष्ट्य समझना चाहिए। काव्यांगों की कसौटी पर यदि हित चौरासी का अनुशीलन किया जाय तो ध्वनि, लक्षणा व्यंजना, अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति आदि की विपुल सामग्री इसमें उपलब्ध होगी। अभिव्यंजना कौशल की दृष्टि से मैं इस काव्य को ब्रजभाषा का एक प्रांजल और परिष्कृत निदर्शन मानता हूँ। मेरी मान्यता है कि यदि भाषा और अप्रस्तुत विधान की कसौटी पर इस काव्य की परख की जाय तो ब्रज भाषा का मुकुट-मणि सिद्ध होगा। वंशी के अवतार श्री गोस्वामी हित हरिवंशजी ने सचमुच ही इस काव्य में वंशी की मनमोहक नादध्वनि को शब्द-शब्द और पद-पद में समाविष्ट कर दिया है। ज्यों ही भक्तजन इन पदों को पढ़ते हैं उनका मानस भावानुकूल पद विन्यास से गूँज उठता है।

श्री हित हरिवंशजी ने 'हित चौरासी' के अतिरिक्त कुछ स्फुट पद भी लिखे हैं जिन्हें 'स्फुट वाणी' के नाम से संकलित कर

किया गया है। स्फुट वाणी की रचना कदाचित् 'हितचौरा
के बाद हुई क्योंकि इसके कई पद सिद्धान्त प्रतिपादन से सम
रखते हैं। पदों के अतिरिक्त दोहे, सवैया, छप्पय और कुण्डलि
भी हैं, कुल मिला कर इनकी संख्या २० है। सिद्धान्त प्रतिपा
की दृष्टि से स्फुट वाणी का विशेष महत्त्व है क्योंकि इसकी प्र
पादन शैली सीधी और सरल है। सामान्य भक्त के समक्ष प्र
रूप से वस्तु की स्थापना करने में स्फुट वाणी के दोहे और कु
लिया बहुत प्रभाव पूर्ण सिद्ध होते हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में हित चौरासी और स्फुट वा
के हार्द को स्पष्ट करने वाली रचना श्री दामोदरदास (सेवक
की वाणी मानी जाती है। प्रारम्भ से ही यह परम्परा चली
रही है कि हित चौरासी और स्फुट वाणी के साथ 'सेवक वा
का प्रकाशन अवश्य किया जाय क्योंकि हितजी की वाणी
मर्म समझने में सेवकजी की वाणी भी सहायक होती है।
परम्परा का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत ग्रंथ में 'सेवक वाणी'
भी समवेत रूप से प्रकाशन हुआ है। साम्प्रदायिक भक्ति
को सर्वांग रूप से जानने के इच्छुक जनों को इस प्रकार प
तीनों ग्रन्थ सुलभ हो सकेंगे। सेवकवाणी सोलह प्रकरणों में प
जित हुई है। इन प्रकरणों में सामयिक और शाश्वत दोनों दृ
से सेवकजी ने विचार किया है।

सेवक जी ने अपने युग की उपेक्षा करके पद रचना नहीं
है, उनकी दृष्टि इतनी व्यापक थी कि तत्त्व बोध के लिए
बोध और व्यष्टि बोध को भी उन्होंने आग्रह पूर्वक स्वीकार कि
है। सेवक वाणी के माध्यम से अनेक ऐसी गुत्थियाँ सुलझ
जो हित चौरासी के गूढ़-मर्म में छिपी हुई हैं और साध
पाठक की पकड़ से बाहर हैं।

इसका निदर्शन है। हित चौरासी में तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है और दोनों का प्रभाव भी अलग-अलग देखा जा सकता है। शब्द मैत्री तो हरिवंशजी की वाणी का प्राण है। संस्कृत और ब्रज के सम्मिलन से मोहक वातावरण सृष्टा करने की कला तो आपको सहज सिद्ध थी। 'कोमल किसलय शयन सुपेशल' और 'चित्र म फटिक विविध निर्मित घर' में तत्सम की छटा तथा 'निज भजन कनक तन जोवन' और 'आलस जुत इतरात रँग मगे मय निसि जागर मलिन मलित री ग्में तद्भव की मनोहारी छटा किसे मुग्ध नहीं करती। हित चौरासी की संगीतात्मकता तो इसी से सिद्ध है कि गोस्वामी जी ने इसे राग पद रूप में लिखा है। प्रत्येक पद किसी न किसी गेय राग का अनुसरण करता है। संगीत और साहित्य का मणि काँचनयोग इसका वैशिष्ट्य समझना चाहिए। काव्यांगों की कसौटी पर यदि हित चौरासी का अनुशीलन किया जाय तो ध्वनि, लक्षणा व्यञ्जना, अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति आदि की विपुल सामग्री इसमें उपलब्ध होगी। अभिव्यञ्जना कौशल की दृष्टि से मैं इस काव्य को ब्रजभाषा का एक मांसल और परिष्कृत निदर्शन मानता हूँ। मेरी मान्यता है कि यदि भाषा और अप्रस्तुत विधान की कसौटी पर इस काव्य की परख की जाय तो ब्रज भाषा का मुकुट-मणि सिद्ध होगा। वंशी के अवतार श्री गोस्वामी हित हरिवंशजी ने सचमुच ही इस काव्य में वंशी की मनमोहक नादध्वनि का शब्द शब्द और पद-पद में समाविष्ट कर दिया है। ज्यों ही भक्तजन इस पदों को पढ़ते हैं उनका मानस भावानुकूल पद विन्यास में गूंज उठता है।

श्री हित हरिवंशजी ने 'हित चौरासी' के अतिरिक्त कुछ स्फुट पद भी लिखे हैं जिन्हें 'स्फुट वाणी' के नाम से संकलित कर

किया गया है। स्फुट वाणी की रचना कदाचित् 'हितचौरासी' के बाद हुई क्योंकि इसके कई पद सिद्धान्त प्रतिपादन से सम्बन्ध रखते हैं। पदों के अतिरिक्त दोहे, सवैया, छप्पय और कुण्डलिया भी हैं, कुल मिला कर इनकी संख्या २७ है। सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से स्फुट वाणी का विशेष महत्व है क्योंकि इसकी प्रतिपादन शैली सीधी और सरल है। सामान्य भक्त के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से वस्तु की स्थापना करने में स्फुट वाणी के दोहे और कुण्डलिया बहुत प्रभाव पूर्ण सिद्ध होते हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में हित चौरासी और स्फुट वाणी के हार्द को स्पष्ट करने वाली रचना श्री दामोदरदास (सेवकजी) की वाणी मानी जाती है। प्रारम्भ से ही यह परम्परा चली आ रही है कि हित चौरासी और स्फुट वाणी के साथ 'सेवक वाणी' का प्रकाशन अवश्य किया जाय क्योंकि हितजी की वाणी का मर्म समझने में सेवकजी की वाणी ही सहायक होती है। उसी परम्परा का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत ग्रंथ में 'सेवक वाणी' का भी समवेत रूप से प्रकाशन हुआ है। साम्प्रदायिक भक्ति तत्व को सर्वांग रूप से जानने के इच्छुक जनों को इस प्रकार एकत्र तीनों ग्रंथ सुलभ हो सकेंगे। सेवकवाणी सोलह प्रकरणों में पल्लवित हुई है। इन प्रकरणों में सामयिक और शाश्वत दोनों दृष्टियों से सेवकजी ने विचार किया है।

सेवक जी ने अपने युग की उपेक्षा करके पद रचना नहीं की है, उनकी दृष्टि इतनी व्यापक थी कि तत्व बोध के लिए ज्ञान बोध और व्यक्ति बोध को भी उन्होंने आदर पूर्वक स्वीकार किया है। सेवक वाणी के माध्यम से अनेक ऐसी गुत्थियाँ सुलझती हैं जो हित चौरासी के गूढ़-मर्म में छिपी हुई हैं और साधारण पाठक की पकड़ से बाहर हैं।

श्री हितमहाप्रभु की परम पावन वाणी का प्रचार और प्रसार अद्यावधि सम्प्रदाय तक ही सीमित बना हुआ है। कतिपय साहित्यानुरागियों के अतिरिक्त सामान्य जनता को हितचौरासी के न तो सिद्धान्त पक्ष का पता है और न साहित्यिक गौरव गरिमा से ही उनका परिचय है। फलतः इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का मर्मोद्घाटन उस धरातल पर नहीं हुआ जिस धरातल पर सूरदास नन्ददास आदि अन्य ब्रजभाषी कवियों की रचनाओं का हुआ है। हित चौरासी तथा स्फुट वाणी के जो संस्करण प्रकाशित हुए थे इतने आकर्षक और सम्पादित नहीं थे जिनकी ओर काव्य रसिक पाठकों का ध्यान आकृष्ट होता। आज से दस वर्ष पूर्व मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ था और मैंने अपने अल्प ज्ञान के आधार पर 'हित चौरासी' की टीका तैयार करने का उपक्रम किया था। आधे से अधिक पदों पर टीका लिखने के बाद मुझे लगा कि मैं केवल साहित्यिक दृष्टि से इस पर टीका-टिप्पणी कर रहा हूँ। वस्तुतः ग्रंथ तो भक्ति तत्त्व का आकर ग्रंथ है जिसमें सूत्ररूप से हित जी महाराज ने अनेक तथ्य संकलित किये हुए हैं। भक्ति के साम्प्रदायिक रूप के उद्घाटन का न तो मुझे ज्ञान था और न मैं इतने दुरूह क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकारी ही था। अतः मैंने अपनी अल्पज्ञता को समझ कर इस कार्य को अधूरा ही छोड़ दिया। किन्तु मैं निरन्तर इस प्रयत्न में रहा कि कोई समर्थ अधिकारी विद्वान इस महान कार्य का भार उठाकर हित चौरासी को टिप्पणियों सहित प्रकाशित करे।

हर्ष का विषय है कि राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य और श्री हित महाप्रभु के वंशज श्री गोस्वामी ललिताचरण जी ने इस दुरूह कार्य का संकल्प किया और बड़ी योग्यता के साथ सारगर्भित समीक्षा सम्पादन तथा यथास्थान आवश्यक टिप्पणियाँ

लिखन का मुख्य कार्य किया । श्री गोस्वामी ललित चरणजी को भक्ति सम्प्रदायों का गंभीर ज्ञान है। टिप्पणियों में उन्होंने जिन स्थलों का उद्‌घाटन किया है वह साम्प्रदायिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि के बिना सम्भव नहीं है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर जानता हूँ कि श्री हितजी की वाणी में तथा श्री सेवक जी की वाणी में ऐसे अनेक पद और सन्दर्भ हैं जिनका मर्म परम्पराबोध के बिना सम्भव नहीं है। श्री ललिता चरणजी हिन्दी-संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी, बंगला और गुजराती के भी अधिकारी विद्वान हैं। उनकी प्रतिपादन शैली का आभास उनके पूर्व प्रकाशित गंभीर ग्रंथ 'श्री हित हरिवंश गोस्वामी, साहित्य और सम्प्रदाय' में पाठकों को प्राप्त हो चुका है। उनकी लेखनी से साम्प्रदायिक और साहित्यिक ग्रंथों का मर्म उद्‌घाटित हो यही हमारी कामना है।

मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि आचार्य ललिताचरणजी गोस्वामी ने मुझे अपने इस सुसम्पादित ग्रंथ की भूमिका लिखने का अवसर प्रदान किया। सच तो यह है गोस्वामीजी जैसे विद्वान् ने अपने नाम के साथ मुझे संयुक्त करके उच्चासन प्रदान किया है जिसका मैं अधिकारी नहीं हूँ। मैं इसे गुरु कृपा मान कर स्वीकार करता हूँ।

—विजयेन्द्र स्नातक

राधा चरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी ।
कुंज केलि दम्पती तहाँ की करत खवासी ॥
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी ॥
व्यास सुवन पथ अनुसरै सोई भलै पहिचानि है ।
हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है ॥

नाभाजी भक्तमाल ६

राधिका वल्लभ लाल आज्ञा सो रसाल दई
सेवा को प्रकाश औ विलास कुञ्ज धाम को ।
सोई विस्तार सुख सार दृग रूप पियो
दियो रसिक नि जिन लियो पक्ष वाम * को ।

प्रियादासजी टीकाकार भक्तमाल

श्री राधिका पद कमल माधुरी परम रस ।
बिना हरिवंशहित को लखान ॥

जासु कृपा कमल खोलो सु मकरन्द रस ।
चतुर मुनि मानिसी अति अमान ॥

श्री वंशी अलि ।

---

* श्री राधा

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

हित चतुरासी के रचयिता श्री हित हरिवंश गोस्वामी के पूर्वज देवबन्द जिला सहारनपुर के रहने वाले थे। उनके पिता व्यास मिश्र जी तत्कालीन दिल्ली पति सिकन्दर लोदी के राज ज्योतिषी थे और ठाट-बाट से रहते थे। एकबार बादशाह के साथ वे दिल्ली से आगरा जा रहे थे। उनकी [illegible] पत्नी तारा रानी उनके साथ थीं। प्रसव-काल निकट होने से वे दिल्ली-आगरा रोड पर स्थित मथुरा से छः मील इधर 'बाद' नामक ग्राम में ठहर गये। वहीं वैशाख सु० ११ सोमवार सं० १५५९ को श्री हिताचार्य का जन्म हुआ।

श्रीहित हरिवंश गोस्वामी का बाल्य और यौवन काल देवबन्द में व्यतीत हुआ। उनके बाल्य काल की अनेक चमत्कार पूर्ण घटनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें उनके संस्कार गत सुदृढ़ राधा-प्रेम की व्यंजना होती है। पाँच वर्ष की आयु में उनको श्री राधा से मंत्र-प्राप्ति हुई और कुछ दिन बाद श्री राधा के आदेश से उन्होंने एक भगवद्-विग्रह को कुएँ से निकाल कर श्री रंगीलाल जी के नाम से देवबन में प्रतिष्ठित किया। यह विग्रह अद्यावधि वहाँ श्री हिताचार्य के वंशजों द्वारा पूजित है।

आठ वर्ष की आयु में श्री हिताचार्य का उपनयन संस्कार और सोलह वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ। उनकी पत्नी का नाम श्री रुक्मिणी जी था जिनसे उनको तीन पुत्र और एक कन्या हुई।

बत्तीस वर्ष की आयु में श्री राधा के आदेश से उन्होंने

वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में चिरथावल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण के पास से उनको भगवद् विग्रह की प्राप्ति हुई जिसको उन्होंने श्री राधावल्लभ लाल के नाम से वृन्दावन में विराजमान किया और उनके नाम से ही अपने सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उन्होंने वृन्दावन में अन्य तीन केलि स्थानों-सेवा कुंज, रासमंडल और मान सरोवर–को भी प्रगट किया। वे अपने जीवन के शेष (सं० १६०९) पर्यन्त १९ वर्ष वृन्दावन में रहे और ब्रज से बाहर नहीं गये।

श्री कृष्ण-रति की प्रधानता

श्री हित हरिवंश ने अपने जीवन काल में प्रेमा भक्ति के दो नये सम्प्रदायों को स्थापित होते हुए देखा था। यह दोनों सम्प्रदाय श्री वल्लभ सम्प्रदाय और श्रीचैतन्य संप्रदाय श्रीकृष्ण की लोक पदातीत शुद्ध प्रेममयी व्रजलीलाओं को लेकर खड़े हुये थे और उनका एकमात्र लक्ष्य श्री कृष्ण के चरणों में एकान्त रति उत्पन्न करना था। व्रज-लीलाओं में श्री राधा कृष्ण की वे विविध शृङ्गार लीलायें भी आजाती हैं जिनका अत्यन्त आकर्षक वर्णन उक्त दोनों संप्रदाय के महात्माओं ने अपनी संस्कृत और व्रजभाषा रचनाओं में किया है। इन वर्णनों में श्री राधा का स्वरूप अत्यन्त गरिमा युक्त और उज्ज्वल होते हुए भी रति का प्रधान विषय श्री कृष्ण ही हैं। श्री राधा आदि व्रजांगनाओं की रति के भी वही एकान्त विषय हैं।

श्रीराधा-पक्षपात

श्रीहित हरिवंश गोस्वामी श्री राधा पक्षपात लेकर आये थे। उनकी प्रधान रति श्रीराधा में थी। उन्होंने अपनी संस्कृत और व्रजभाषा रचनाओं में राधा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन इस ढङ्ग से

किया है कि उसके द्वारा श्रीकृष्ण-रति के स्थान में श्रीराधा रति का उद्बोधन होता है। अपनी संस्कृत रचना 'राधा रस सुधानिधि' की समाप्ति पर उन्होंने अपनी वाणी के दो लक्ष्य बताये हैं। एक यह कि वह 'कोमल कुंज पुंजों से सुशोभित वृन्दाटवी महल से संलग्न है' और दूसरा यह कि 'उसमें प्रायः श्री वृषभानु नन्दिनी के पद-नख की ज्योति-छटा क्रीड़ा करती रहती है।'[1] हित चतुरासी में तो उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया है कि 'मैंने अपनी मति के अनुसार श्यामा श्याम की शृङ्गार-केलि का जो यह वर्णन किया है उसके श्रवण से श्रीराधा के सुकुमार चरण कमलों में रति उत्पन्न होती है।'[2] अन्यत्र उन्होंने शपथ पूर्वक श्रीराधा को ही अपना 'प्राणनाथ' घोषित किया है।[3]

श्रीहित हरिवंश ने अपने समय के जन समाज में श्रीराधा का जो रूप प्रचलित देखा था वह उनकी दृष्टि में मामूली प्रकार का था। उन्होंने अपने एक श्लोक में 'प्रेम रसाम्बुधि' श्रीराधा को भी काल-गति के क्रम से 'साधारण' बना हुआ देखकर दैव को नमस्कार किया है। उनके मन और नेत्रों में श्रीराधा का जो 'असाधारण' रूप समा रहा था उसकी प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने विविध प्रयास किये जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

---

१ रम्या कोमल कुंज पुंज विलसद्वृन्दाटवी मंदिरे।
क्रीडन्ती वृषभानुजा पद-नख-ज्योतिश् छटा प्रायशः।
(रा० सु० २६८)

२ हित हरिवंश यथामति वरनत कृष्ण रसामृत सार,
श्रवण सुनत प्रापक रति राधा पद-अम्बुज सुकुमार। हि. च ३०

३ रहौ कोऊ काहू मनहिं दियें।
मेरे प्राणनाथ श्रीश्यामा शपथ करौं तृण छियें। (स्फु० वा० [illegible])

१—उन्होंने श्री राधा-जन्मोत्सव का प्रचलन किया और अपनी सेवा-पद्धति में उसको श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव से अधिक महत्व दिया। स्वरचित श्रीराधा की जन्म-बधाई में उन्होंने प्रेमी भक्तों को श्रीराधा के जन्म के समय वृषभानु गोप के द्वार पर चलने के लिए आह्वान किया है और वहाँ से 'आदर' सहित ऊपर हरिद्रामिश्रित दुग्ध दधि छिड़का है।[1] सूरदास जी ने भी श्रीराधा की जन्म बधाईयाँ गाई हैं किन्तु जैसा उनकी एक बधाई से प्रगट होता है वे उस समय की रची हुई हैं जब श्री राधा का महत्व श्रीकृष्ण से भी अधिक बढ़ चला था।[2] सूरदासजी (ज० सं० १५४० के लगभग) श्रीहिताचार्य से १८-१९ वर्ष बड़े थे किन्तु वे उनके निकुंज गमन के ११ वर्ष बाद सं० १६२० तक विद्यमान रहे थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में श्रीराधा की प्रधानता को स्थापित होते देखा था और वे उससे हर्षित हुए थे।

२—उन्होंने अपने एक पद में यह बतलाया कि श्याम

१ चलौ वृषभानु गोप के द्वार।
जन्म लियौ मोहन हित स्यामा आनन्द निधि सुकुमार॥
× × ×
जै श्रीहित हरिवंश दुग्ध दधि छिरकत मध्य हरिद्रा गार॥
(स्फुट वा० १६)

आजु रावल में बजत बधाई।
धन्य कुल ताही को जिन यह कुंवरि सुलच्छन जाई॥
× × ×
सूरदास स्वामी ते अधिक हू चली जिन मोद बढ़ाई।

सुन्दर बंशी में श्रीराधा नाम का ही गान करते हैं।[1] उनके शिष्य श्री हरिराम व्यास ने उस राधानाम को ही अपना परम धन बनाया है जिसको मोहन अपनी बंशी में टेरते हैं और बार-बार स्मरण करते हैं।

३—श्रीमद्भागवत में वर्णित रासलीला में दो गोपिका के बीच में एक श्याम सुन्दर के क्रम से सम्पूर्ण रास मंडल की रचना बतलाई गई है। श्रीहिताचार्य ने इस वृहत मंडल के मध्य में एक अन्य रासमंडल की योजना की और उसमें राधिका श्याम का मिलन करवाया।[3] उन्होंने अपनी उपासना इस मध्यस्थ मंडल पर ही आधारित की और इस मंडल के प्रतीक रूप में उन्होंने वृन्दावन के मध्य में एक रास मंडल का निर्माण कराया और वहाँ श्रीराधा की गादी की स्थापना की। सूरदास जी ने भी अपने कई रास के पदों में उक्त योजना के अनुसार

---

१ सब सुरनि धरत नव नागर नागर नव नवधा रति पोषति।

(हि० चौ० १४)

२ परम धन राधा नाम अधार।

जाहि श्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारम्बार ॥

× × ×

श्रीशुक प्रगट कियो नहीं याते जानि सारको सार।

व्यास दास अब प्रगट बखानत डार भार में भार ॥

(व्यास वा० १४)

३ श्याम संग राधिका रासमण्डल बनी।

बीच नंदलाल व्रजबाल चंपक बरन

ज्यौं घन तड़ित बिच कनक मरकत मनी।

(हि० चौ० ३१)

गोपी और कृष्ण के द्वारा बनाये हुए मंडल में राधा मोहन का मध्य में स्थापित किया है १

श्रीकृष्ण रति के स्थान में श्रीराधा रति की स्थापना देखने में एक सामान्य सी घटना मालुम होती है किन्तु इसके द्वारा प्रेमाभक्ति के क्षेत्र में एक नवीन ज्योति जग गई जिसके प्रकाश में प्रेम के अनेक नये पहलू चमक उठे और एक सर्वथा नवीन प्रेम-पद्धति का स्थापन हो गया जो नित्य विहार पद्धति अथवा राधा-पद्धति कहलाती है। श्री कृष्ण रति को प्रधान मानने वाली प्रेम-पद्धति से यह अनेक बातों में भिन्न है अत इसमें राधा कृष्ण का स्वरूप उनका परस्पर प्रेम-सम्बन्ध उनका लीला-विलास आदि सब कुछ भिन्न प्रकार का है। प्राचीन पुराणों में कहीं भी श्रीराधा का रति का प्रधान विषय बनाना का उपक्रम दिखलाई नहीं देता इस स्थान पर तो सर्वत्र श्रीकृष्ण ही विराजमान हैं।

ग्रन्थ रचना-भार — श्री हित हरिवंश गोस्वामी द्वारा रचित ब्रजभाषा में केवल १११ छन्द प्राप्त हैं जिनमें से चौरासी पद 'हित चौरासी' या 'हित चतुरासी' के नाम से सकलित हैं और शेष ७ छन्द 'फुटकर वाणी' या 'स्फुट वाणी' कहलाते हैं। इन पदों का सकलन और उस क्रम में

---

१ नन्दकुमार राम रस भीनी मन नागरिनु विलिक मुग दीनी।

× × ×

बिच गोरी बिच गिरे मोहन मनि कंचन माहुनि मुध मार॥

राधा मोहन मध्य बिराजे त्रिभुवन की शोभा ये भाजै। इत्यादि

सू० मा० पृ० १५२ वागेश्वर प्रेस संस्करण

विभाजन कब हुआ है इसका अनुमान लगाने के लिए हमारे सामने दो तथ्य हैं और दोनों सेवक वाणी से सम्बंधित हैं। सेवक वाणी श्री हिताचार्य के बाद में रचा जाने वाला सम्प्रदाय का प्रथम ग्रन्थ है। इसमें श्री हित जी के जितने छन्द उद्धृत किये गए हैं वे सब हित चौरासी के हैं एक भी छन्द 'स्फुट-वाणी' का नहीं है। इससे यह सीधा अनुमान होता है कि श्री हितहरिवंश की वाणी का विभाजन सेवक वाणी की रचना से पहिले हो चुका था।

दूसरा तथ्य 'रसिक अनन्य माल' में दिये हुए सेवकजी के चरित्र से प्राप्त होता है। सेवक वाणी की रचना के बाद श्री हिताचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र गोस्वामी ने जब उसको सुना तो वे बहुत प्रभावित हुये और उन्होंने दोनों पोथियों—चौरासी और सेवकवाणी—को साथ में लिखवाया[1] और आज्ञा दी[*] कि इन दोनों को साथ ही लिखना पढ़ना चाहिये। इससे भी यही सिद्ध होता है कि 'हित चतुरासी' का संकलन सेवक-वाणी की रचना के पूर्व हो चुका था।

---

१ तब त आज्ञा दई कृपाई पोथी दोऊ लिखी लिखाई।
चौरासी अरु सेवक बानी इक संग लिखन-पढ़न सुखदानी।
र० अ० मा० पृ० ४०

* इस आज्ञा का प्रभाव भी पालन हुआ मालूम होता है। लेखक ने अठारहवीं सदी की लिखी हुई हित चौरासी की कई ऐसी प्रतियाँ देखी हैं जिनमें सेवक वाणी साथ लगी है। इनमें से एक प्रति बाँके बिहारी जी के गोस्वामी श्रीम... के यहाँ है। यह सम्वत् १७१० की लिखी है।

सेवकवाणी का रचनाकाल

सेवक वाणी में रचना काल नहीं दिया है किन्तु उसके अन्तःसाक्ष्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह अकबर के शासन काल में रची गई है। सेवक जी ने श्री हिताचार्य के जन्म का प्रभाव वर्णन करते हुए कहा है कि उनके प्रगट होते ही लोगों में परस्पर प्रीति बढ़ गई और वे अपने-अपने धर्मों का पालन करने लगे। चारों ओर सुभिक्ष हो गया। म्लेच्छ यवन हरि के यश का विस्तार करने लगे और परम ललित वाणी बोलने लगे। सबको अपनी रुचि के अनुसार जीवन यापन की स्वतन्त्रता मिल गई और म्लेच्छ शासक अपनी प्रजा का पालन करने लगे।[1]

धार्मिक उत्पीड़न और राजनैतिक असुरक्षा के उस युग में उपर्युक्त स्थिति अकबर के शासन काल में ही बनी थी। अकबर ने सं. १६२० (सन् १५६३) में हिन्दुओं पर से तीर्थ यात्रा का कर हटा लिया था और इसके एक वर्ष बाद जजिया भी बिलकुल बन्द कर दिया था। प्रजा के सब वर्गों को उसने पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी थी और उसकी सुदृढ़ और पक्षपात हीन शासन प्रणाली के फलस्वरूप देश में सर्वत्र शान्ति और सुरक्षा फैल गई थी। अतः सेवक वाणी की रचना सं० १६२५ के लगभग हुई होगी। रसिक अनन्य माल में सेवक जी के जीवन की घटनाओं का क्रम जिस प्रकार दिया गया है उससे यह प्रतीत होता है कि उनकी वाणी की रचना श्रीहिताचार्य के निकुञ्ज गमन के थोड़े दिन बाद—अधिक से अधिक पाँच वर्ष के अन्दर

---

1 सेवक वाणी १-४-६

ही हुई है[1] किन्तु ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य से उपर्युक्त काल ही निर्धारित होता है।

अन्य समकालीन वाणीकार

बाबा हित वृन्दावनदास ने नित्य विहार की उपासना और उसके प्रचार में हिताचार्य के तीन सहयोगी बताये हैं—स्वामी हरिदास जी, श्री हरिराम व्यास और श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती। उक्त तीनों रसिक महात्माओं ने श्री हिताचार्य के जीवन काल में ही नित्य विहार का गान आरम्भ कर दिया था किन्तु ये तीनों उनके निकुंज गमन के बहुत दिना बाद तक विद्यमान रहे थे और काव्य रचना करते रहे थे। स्वामी हरिदास जी तानसेन के शिक्षा गुरु माने जाते हैं। तानसेन को अकबर ने सं० १६१६ में रीवाँ के राजा रामचन्द से माँगा था। अकबर का प्रारम्भिक जीवन साम्राज्य का विस्तार करने में व्यतीत हुआ था और वह सं० १६२५ के पूर्व स्थिर न हो सका था। वह स्वामी हरिदास जी से सं० १६२५ और १६३० के बीच में कभी मिला होगा और इस प्रकार स्वामी जी की उपस्थिति उक्त काल तक अनुमानित होती है। उनके रचे पदों का 'केलिमाल' और 'सिद्धान्त

---

१ रसिक अनन्य माल के प्रथम चरित्र का गद्य रूपान्तर इस पुस्तक में प्रथम वाणी के प्रारम्भ में दिया गया है।

२ सबके जु मुकुट मणि श्यामानन्द पुनि सुधर्म सुपोम्नन युग सुचंद।
मुन धामधीर मूरति अमन्द पुनि भक्तिपद्म परबोधानन्द।
इन मिलि जु भक्ति कीनी प्रचार व्रज-वृन्दावन नित प्रति विहार।
मन किये अनाथ अपि धुनि जु सार, सेवक हू को संगम विचार॥
(श्रीहरिवंश जू को परिवार सहित अनन्य नाम वर्णन)

के पदों के रूप में संकलन भी सं० १६२० के बाद कभी हुआ होगा।

श्री हरिराम व्यास ने स्वामी हरिदास जी की प्रशंसा में कई पद कहे हैं। उनमें से एक पद में यह आभास मिलता है कि स्वामीजी का निकुंज वास उनके सामने हो गया था और वे स्वामी जी के बाद अनेक वर्षों तक जीवित रहे थे।[1] श्री प्रबोधानन्द सरस्वती ने हिताचार्य के द्वितीय पुत्र श्री कृष्णचन्द्र गोस्वामी के संस्कृत काव्य ग्रन्थ 'कर्णानन्द' की टीका की है। उक्त ग्रन्थ में रचनाकाल शकाब्द १५०० (सं० १६३५) दिया हुआ है।[2] अतः श्री प्रबोधानन्द उक्तकाल के बाद तक विद्यमान थे।

युगलशत का रचनाकाल निम्बार्क सम्प्रदाय की ओर से श्री भट्ट जी एवं उनके शिष्य श्री हरिव्यासदेव जी द्वारा श्री हरिप्रिया जी को नित्य विहार में साथ मानकर बतलाया जाता है। श्रीभट्ट जी 'युगलशत' के कर्ता प्रसिद्ध हैं। इस ग्रंथ में रचनाकाल दिया हुआ है—

नयन बाण पुनि राम ससि गनौं अङ्क गति वाम।
प्रगट भयो श्रीयुगल शत यह संवत् अभिराम॥

---

१ अनन्य नृपति स्वामी हरिदास।

× × ×

अपनी कन हठि ओर निबाही अब मति कठ उसास।

× × ×

अबके साधु व्यास हमहूँ से जगत करत उपहास॥

(व्या० वा० ३०)

२ वर्षाकृष्णा शकाब्दे गगन-गगन-बाणेन्दु गण्ये [illegible]

इस दोहे के अनुसार युगलशत का रचना काल सं० १६५२ सिद्ध होता है। निम्बार्क सम्प्रदाय की ओर से 'राग' के स्थान में 'राम' पाठ बतलाया जाता है जिससे सं० १३५२ निर्धारित होता है। हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास-ग्रन्थों में श्रीभट जी का परिचय और उनकी रचनाओं के उदाहरण दिए हुये हैं किन्तु यह सब श्रीभटजी का रचना-काल सत्रहवीं शती का पूर्वार्ध ही मानते हैं। इसकी मान्यता का आधार नागरी प्रचारिणी सभा काशी अथवा अन्यत्र मिलने वाली युगलशत की प्राचीन प्रतियाँ ही हैं। लेखक को भी नागरी प्रचारिणी सभा के शोध विभाग से सं० १८६८ की एक प्रति का विवरण प्राप्त हुआ है और उसमें भी 'राग' ही पाठ है 'राम' नहीं है।[1]

---

१ २१-४०० ए

आदि—

श्री गणेशायनमः । श्रीराधिकाबिहारी जी को जय । श्री निम्बादित्य मत श्री आदि वाणी युगलशत श्रीभट जी महाराज कृत लिख्यते । सं० १८६८ माघ मासे कृष्ण पक्षे शुभ दिन । छप्पै ।

२१-४०० बी—

अन्त—

अथ ध्यान स्तुति लिख्यते ।

श्रीभट प्रगट युगलशत पढ़ कंठ किहूँ काल ।
सुरत नैनि अवलोक तें, मिटे त्रिविध जंजाल ॥

नयन-बाण पुनि राग-शशि गनौं अंक गति वाम ।
प्रगट भयो श्री युगलशत यह संवत् अभिराम ॥

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। श्री हरिराम व्यास ने अपने समकालीन अनेक प्रसिद्ध भक्तों की महिमा का गान अपनी 'साधुन की स्तुति' में किया है। इस 'स्तुति' के अन्तिम पद में उन्होंने 'सैन धना अरु नामा पीपा' से प्रारम्भ करके अपने समकालीन भक्तों के नामों की पूरी तालिका दी है किन्तु उसमें श्रीभटजी का नामोल्लेख नहीं है।[1] यदि श्रीभट जी व्यासजी के जीवनकाल में या उनसे पूर्व भक्त रूप में प्रसिद्ध हो गये होते तो व्यासजी उनका उल्लेख किए बिना नहीं रहते। ध्रुवदास जी की 'भक्त-नामावली' की रचना व्यासजी के निकुंज गमन के बाद हुई थी।[2] उसमें हम श्रीभटजी के नाम का उल्लेख पाते हैं।[3] अतः 'युगलशत' का रचना काल सं० १६५२ ही ठीक प्रतीत होता है और 'हितचतुरासी' की रचना इससे बहुत पूर्व हो चुकी थी। हरिव्यास देव जी श्रीभट जी के शिष्य थे अतः उनका काल स्वभावतः श्रीभटजी के बाद आता है।

१ 'व्यासवाणी' पृ० १० ८१ पर अखिल भारतीय श्री हित राधा वल्लभीय महासभा वृन्दावन का संस्करण।

२ कहनी-करनी करि गयो एक व्यास इहि काल।
लोक-वेद तजि कै भजे राधा वल्लभ लाल॥

(भक्त नामावली)

३ वर्धमान श्रीभट पद पावन ब्रज वृन्दावन गायो।
करि प्रतीति सर्वोपरि जान्यो याते चित्त समायो॥

(भक्त नामावली)

प्राचीन प्रतियाँ और टीकायें

हित चौरासी की अधिकांश प्रतियाँ कम पढ़े लिखों द्वारा लिखी मिलती हैं। उनके आधार पर ग्रन्थ का पाठ संशोधन सुगम नहीं है। लेखक को इस काम के लिए प्राचीन टीकायें बहुत उपयोगी मालूम दी हैं। वैसे अधिकांश टीकायें भी अपढ़ लिपिकों की लिखी हुई हैं किन्तु उनमें सुविधा यह है कि मूल का अनुसंधान अर्थ के द्वारा हो जाता है। लिपिकों के लिये 'सुन्दरि' के स्थान में 'सुन्दर' और 'सुन्दर' के स्थान में 'सुन्दरि' लिख देना मामूली बात है किन्तु अर्थ के सहारे ठीक पाठ समझ में आ जाता है। 'हित चतुरासी' का वर्तमान पाठ प्रेमदास जी की टीका में दिए हुए पाठ के अनुसार है। यह टीका विक्रम की अठारहवीं सदी के अन्तिम दशक में लिखी गई है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के टीकाकारों ने प्रेमदासजी का पाठ स्वीकार करके टीकाएँ लिखी हैं। किन्तु प्रेमदास जी से पूर्व के टीकाकारों में कई पदों में पाठ-भेद दिखलाई देता है तथा अन्य कई भेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। नीचे प्रेमदासजी से पूर्व की टीकाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

१—श्री रसिकलाल गोस्वामीकृत 'रहस्य अर्थ निरूपण' नामक टीका। यह टीका सं० १७३४ की श्रावण शुक्ला तीज को पूर्ण हुई है।[1] हित चतुरासी की प्रचलित प्रतियों में एक फलस्तुति लगी हुई है जिसमें दो छप्पय हैं। इसके साथ एक

---

१ संवत् सत्रहसै जब बरस बीते चौतीस।
शुभ सावन सुकला जु गुरु तीज जु निसिदिन सधीस॥

कथित राग गणना का भी लगा हुआ है। उक्त टीका के मूल के साथ यह दोहा ही छन्द नहीं है। इसके स्थान में टीकाकार कृत एक फलस्तुति दोहा में लग रही है। दूसरी भिन्नता यह है कि प्रचलित प्रतियों में प्रथम पाँच पद विभास राग में हैं इस टीका में व ललित राग में है। इसके अतिरिक्त इस टीकामें दूसरे पद के स्थान में प्रचलित तीसरा पद है और तीसरे के स्थान में दूसरा। प्रचलित प्रतियों से इस टीका के पाँच पदों में पाठ भेद है। ११ वें पद की दूसरी पंक्ति में 'मरित' के स्थान में 'मगी' पाठ है। १६ वें पद की दूसरी पंक्ति में मन के स्थान में 'मनी' पाठ है। ४२ वें पद की दूसरी पंक्ति में 'चितवत' के स्थान में 'चितवनि' पाठ है। ४६ वें पद की दूसरी पंक्ति में 'सों' के स्थान में 'ज्यों' पाठ है। ६३ वें पद के चौथे छन्द की तीसरी पंक्ति में सुन्दरि के स्थान में सुन्दर पाठ है और इन्हीं पाठों के अनुकूल टीका की गई है।[1]

२—हित धरणीधर द्वारा कृत टीका[2]—इस टीका की पुष्पिका इस प्रकार है संवत् १७८९ फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष १५ पृथ्वी सगाउ (शनी) कौं संपूर्ण। सरस नाम पाठिक परमानन्द सम्पान उदपरा शुभमस्तु श्रीरस्तु सुहस्त धरनीधरदास सुत श्री जगजीवन दास के। इससे प्रतीत होता है कि यह प्रति उस्त संवत्में टीकाकार के पुत्र जगजीवनदास के लिए लिखी गई है और यह इसका रचनाकाल नहीं है। टीका के प्रारम्भ में श्री राधा वल्लभो जयति श्री श्यामनन्दनो जयति और श्री नामाचार्य मति जयति लिखा है। इससे यह अनुमान होता है कि टीकाकार

१ यह टीका डा० श्री प्रभुदेवी लाल जी के संग्रह में है।
२ यह टीका गोस्वामी श्री हितलाल जी के यहाँ संग्रहीत है।

श्री हिताचार्य के प्रपात्र श्रीदामोदर गोस्वामी के शिष्य थे। उक्त गोस्वामी जी का काल संवत् १६१२ से १७१४ तक है। यदि टीकाकार ने अपने गुरुदेव के जीवन काल में यह टीका लिखी हो तो यह सत्रहवीं शती के अन्त की या अठारहवीं के आदि की टीका हो सकती है।

इस टीका में भी प्रथम पाँच छन्द ललित राग में रखे गए हैं और पदों का क्रम भी कई स्थानों में परिवर्तित है। प्रचलित प्रतियों का २६ वाँ पद और उसके बाद के छः पद देव गंधार राग में है। इस टीका में उक्त पद २१ वाँ पद है और यह तथा इसके बाद में छः पद गूजरी राग में हैं। श्रीरसिक लाल जी की टीका में यह सातों पद देव गंधार राग में ही हैं और इनकी क्रम-संख्या भी प्रचलित प्रतियों जैसी ही है। इस टीका में सबसे बड़ा पाठ भेद १८ वें पद में है। प्रचलित पाठ 'ताकौं तै अधर सुधा रस चाख्यो' के स्थान में इसमें 'तिन तेरो अधर सुधा रस चाख्यो' पाठ है। इससे अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। श्री रसिक लाल गोस्वामी एवं उनके बाद के सब टीकाकारों ने 'ताकौं तै अधर सुधारस चाख्यो' पाठ ही रखा है। इस पाठ वाली कोई अन्य टीका या हित अनुरागी की कोई प्रति प्राप्त होने पर ही इस पाठ की पुष्टि हो सकती है। ८० वें पद की प्रारम्भिक पंक्ति 'बढ़ैलाल निकुंज भवन' के स्थान में इस टीका में 'वनि बर लाल निकुंज भवन' पाठ है। ८२ वें पद की पाँचवीं पंक्ति में 'मारजु ज्यों' के स्थान में 'मारजु' पाठ है और छठी पंक्ति में 'मोहन बिनु' की जगह 'मोहन ज्यों' पाठ है। ८४ वें पद की चौथी पंक्ति में 'लोभ साधन' के स्थान में 'लाभ साधन' पाठ है।

३—श्रीगुरुलाल गोस्वामी कृत टीका—यह टीका छन्द

शुक्ल ३ सं० १७७० को पूर्ण हुई है ।[1] लेखक ने इस टीका की जो प्रति[2] देखी है उसमें मूल पदों की केवल प्रथम पंक्ति दी हुई है अतः पाठ संशोधन का अवकाश इसमें नहीं है । फिर भी पाठ भेद वाले स्थानों को देखने से मालूम होता है कि इस टीका में प्रचलित पाठ ही स्वीकृत है । फल स्तुति वाले दो छप्पयों में से पहिला छप्पय प्रथम बार इस टीका में लगा मिलता है । टीका कवित्तों में की गई है । टीकाकार सुकवि हैं और टीका जैसे पराधीन क्षेत्र में भी उनकी काव्य प्रतिभा अपनी उन्मुक्त झलक दिखलाए बिना नहीं रही है ।

४—लोकनाथ जी की टीका—यह टीका व्रजभाषा गद्य में है । टीकाकार ने प्रारम्भ में श्रीसुखलाल गोस्वामी की वंदना की है ।[3] इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है । लेखक के पास इसकी सं० १८८१ की प्रति है । यह सुखलालजी की टीका के पाछे ही आगे-पाछे लिखी गई होगी अतः इसका काल भी यही मानना ठीक रहेगा ।

५—प्रेमदास जी की टीका—यह हित चतुरासी की सबसे अधिक विस्तृत और मूल का अनुसरण करने वाली टीका

---

१ संवत सत्रहसै बरस बीते सत्तर और ।
अगहन कारी भई पोथी मम सिर मौर ॥
बैसाखी तिथि तीज की मंगल हुलसो चीन ।
प्रगटाई जिन गुरु प्रगट मनमें अति सुख दीन ॥

२ यह प्रति गोस्वामी श्रीरूपलालजी के संग्रहालय में है ।

३ श्रीसुखलाल सरोजपद तिनकी निज सिर धारि ।
स्याम सुयश सुभ हित की टीका लिखत बिचारि ॥

माना जाता है। यह भी ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें फल स्तुति के दोनों छप्पय लगे हुए हैं और उनके साथ राग गणना वाला कवित्त भी है। हित चतुरासी का प्रचलित पाठ और उसके पीछे लगी फल स्तुति आदि इस टीका के अनुसार ही है। प्रेमदास जी ने फलस्तुति के छप्पयों और राग-गणना वाले कवित्त की भी टीका की है। उन्होंने प्रथम छप्पय को श्रीहिताचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र गोस्वामी की रचना बतलाया है किन्तु यह समझ में नहीं आता कि अठारहवी शती के आरम्भ के टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में इसे क्यों नहीं दिया? जैसा हम देख चुके हैं यह छप्पय सर्वप्रथम श्री सुखलाल गोस्वामी की टीका में लगा मिलता है किन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। अतः प्रामाणिक रूप से इसका अङ्गीकार प्रथमबार प्रेमदास जी की टीका में ही हुआ है। दूसरे छप्पय में तो स्पष्ट रूप से श्री रूपलाल गोस्वामी के नाम की छाप लग रही है। राग-गणना वाला कवित्त प्रेमदास जी ने श्रीहरजीमल द्वारा रचित बतलाया है। यह हरजीमलजी गोस्वामी कुंजलाल जी के शिष्य थे और अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इस टीका की रचना सं० १७९१ में हुई है।[1]

प्रकाशित संस्करण —हित चौरासी का प्रथम संस्करण मथुरा के स्यामकाशी प्रेस से 'प्रेमलता' नाम से लेथो अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशन का संवत् नहीं दिया हुआ है किन्तु ऐसा सुना जाता है कि यह सं० १९६० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह अशुद्ध है।

---

१ यह टीका गोस्वामी श्रीवनचन्द्रलाल जी के संग्रह में है।

पूरन ३ सं० १७७० का पूर्ण हुई है।[1] लेखक ने इस टीका की जो प्रति[2] देखी है उसमें मूल पदों की केवल प्रथम पंक्ति दी हुई है अतः पाठ संशोधन का अवकाश इसमें नहीं है। फिर भी पाठ भेद वाले स्थानों को देखने से मालूम होता है कि इस टीका में प्रचलित पाठ ही स्वीकृत है। फल स्तुति वाले दो छप्पयों में से पहिला छप्पय प्रथम बार इस टीका में लगा मिलता है। टीका कविता में की गई है। टीकाकार सुकवि हैं और टीका जैसे पराधीन क्षेत्र में भी उनकी काव्य प्रतिभा अपनी उन्मुक्त झलक दिखलाए बिना नहीं रही है।

४—लोकनाथ जी की टीका—यह टीका ब्रजभाषा गद्य में है। टीकाकार ने प्रारम्भ में श्रीतुलसीदास गोस्वामी की वन्दना की है।[3] इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है। लेखक के पास इसकी सं० १८८१ की प्रति है। यह तुलसीदासजी की टीका से थोड़े ही पीछे-पाछे लिखी गई होगी अतः इसका काल भी यही मानना ठीक रहेगा।

५—प्रेमदास जी की टीका—यह हित चतुरासी की सबसे अधिक विस्तृत और मूल का अनुसरण करने वाली टीका

---

१ संवत सत्रह सत और सत्तर और।
फागुन कासी भई पोथी सब सिर मौर॥
बैसागी जिनजीव की मंगल हुल्यो चीन।
भगटाई जिन दुख प्रगट मनसे भनि गुन लीन॥

२ यह प्रति गोस्वामी श्रीरूपलालजी के संग्रहालय में है।

३ श्रीतुलसीदास गोसाईंजी हितनी निज सिर धारि।
ध्यान सुमन सुभ गिरा की टीका लिखत बिचारि॥

माना जाता है। यह भी ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें फल स्तुति के दोनों छप्पय लगे हुए हैं और उनके साथ राग गणना वाला कवित्त भी है। हित चतुरासी का प्रचलित पाठ और उसके पीछे लगी फल स्तुति आदि इस टीका के अनुसार ही है। प्रेमदास जी ने फलस्तुति के छप्पयों और राग-गणना वाले कवित्त की भी टीका की है। उन्होंने प्रथम छप्पय को श्रीहिताचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र गोस्वामी की रचना बतलाया है किन्तु यह समझ में नहीं आता कि अठारहवीं शती के प्रारम्भ के टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में इसे क्यों नहीं दिया? जैसा हम देख चुके हैं यह छप्पय सर्वप्रथम श्री सुखलाल गोस्वामी की टीका में लगा मिलता है किन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। अतः प्रामाणिक रूप से इसका अङ्गीकार प्रथमवार प्रेमदास जी की टीका में ही हुआ है। दूसरे छप्पय में तो स्पष्ट रूप से श्री रूपलाल गोस्वामी के नाम की छाप लग रही है। राग-गणना वाला कवित्त प्रेमदास जी ने श्रीहरजीमल द्वारा रचित बतलाया है। यह हरजीमलजी गोस्वामी कुञ्जलाल जी के शिष्य थे और अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इस टीका की रचना सं० १७९१ में हुई है।[१]

प्रकाशित संस्करण —हित चौरासी का प्रथम संस्करण मथुरा के श्यामकाशी प्रेस से 'प्रेमलता' नाम से लेथो अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशन का सवत् नहीं दिया हुआ है किन्तु ऐसा सुना जाता है कि यह सं० १९६० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह बहुत अशुद्ध है।

---

१ यह टीका गोस्वामी श्रीवनदेवलाल जी के संग्रह में है।

शुक्ल ६ सं० १७७० को पूर्ण हुई है।[1] लेखक ने इस टीका की जो प्रति[2] देखी है उसमें मूल पदों की केवल प्रथम पंक्ति दी हुई है अतः पाठ संशोधन का अवकाश इसमें नहीं है। फिर भी पाठ भेद वाले स्थानों को देखने से मालूम होता है कि इस टीका में प्रचलित पाठ ही स्वीकृत है। फल स्तुति वाले दो छप्पयों में से पहिला छप्पय प्रथम बार इस टीका में लगा मिलता है। टीका कविता में की गई है। टीकाकार सुकवि हैं और टीका जैसे पराधीन क्षेत्र में भी उनकी काव्य प्रतिभा अपनी उन्मुक्त झलक दिखलाए बिना नहीं रही है।

४—लोकनाथ जी की टीका—यह टीका ब्रजभाषा गद्य में है। टीकाकार ने प्रारम्भ में श्रीसुखलाल गोस्वामी की वंदना की है।[3] इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है। लेखक के पास इसकी सं० १८८१ की प्रति है। यह सुखलालजी की टीका से थोड़े ही आगे-पीछे लिखी गई होगी अतः इसका काल भी यही मानना ठीक रहेगा।

५—प्रेमदास जी की टीका—यह हित चतुरासी की सबसे अधिक विशद और मूल का अनुसरण करने वाली टीका

---

१ मदन मनोहर जन्म तीजे अगर गौर।
सम्पूरन बानी भई सोभो सब सिर मौर॥
अमानो नितनीय की सीतल हरयो पीन।
बगराई जिन सुख प्रगट मनमें अति सुख दीन॥

२ यह प्रति गोस्वामी श्रीरूपलालजी के मन्दिरालय में है।

३ श्रीसुखलाल मनोहर मिलि लाडिली सिर धारि।
श्याम सुखद सुख हित की, टीका लिखत विचारि॥

माना जाता है। यह भी ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें फल स्तुति के दोनों छप्पय लगे हुए हैं और उनके साथ राग-गणना वाला कवित्त भी है। हित चतुरासी का प्रचलित पाठ और उसके पीछे लगी फल स्तुति आदि इस टीका के अनुसार ही है। प्रेमदास जी ने फलस्तुति के छप्पयों और राग-गणना वाले कवित्त की भी टीका की है। उन्होंने प्रथम छप्पय को श्रीहित हरिवंश के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र गोस्वामी की रचना बतलाया है किन्तु यह समझ में नहीं आता कि अठारहवीं शती के प्रारम्भ के टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में इसे क्यों नहीं दिया? जैसा हम देख चुके हैं यह छप्पय सर्वप्रथम श्री सुखलाल गोस्वामी की टीका में लगा मिलता है किन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। अतः प्रामाणिक रूप से इसका अङ्गीकार प्रथमबार प्रेमदास जी की टीका में ही हुआ है। दूसरे छप्पय में तो स्पष्ट रूप से श्री रूपलाल गोस्वामी के नाम की छाप लग रही है। राग गणना वाला कवित्त प्रेमदास जी ने श्रीहरजीमल द्वारा रचित बतलाया है। यह हरजीमलजी गोस्वामी कृष्णलाल जी के शिष्य थे और अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इस टीका की रचना सं० १७९१ में हुई है।[1]

प्रकाशित संस्करण—हित चौरासी का प्रथम संस्करण मथुरा के श्यामकाशी प्रेस से 'प्रेमलता' नाम से सीसे अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशन का सवत् नहीं दिया हुआ है किन्तु ऐसा सुना जाता है कि यह सं० १९६० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह बहुत अशुद्ध है।

---

१ यह टीका गोस्वामी श्रीवनचन्द्रलाल जी के संग्रह में है।

—द्वितीय संस्करण गो० गोवर्धनलाल जी 'प्रेम कवि' ने 'हित चौरासी' के नाम से प्रकाशित किया था। इसमें भी प्रकाशन-काल नहीं है। इसमें पाठ अधिक शुद्ध है। यह संस्करण सं० १९६५ ६६ के लगभग का बताया जाता है।

—तीसरा संस्करण गोस्वामी सोहनलाल जी द्वारा सं० १९७१ में प्रकाशित किया गया। यह काफी शुद्ध छपा है और इसमें सेवक वाणी भी लग रही है।

—चौथा संस्करण जयपुर से श्री सुन्दरीशरण जी द्वारा प्रकाशित हुआ। लेखक को यह कहीं देखने को नहीं मिला। अतः इसके संबंध में कोई जानकारी नहीं दी जा सकती।

—पाँचवाँ संस्करण 'षोडश ग्रन्थावली' में गोस्वामी गोपाल वल्लभाचार्य ने ब्रजेन्द्र प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित किया। इसमें भी प्रकाशन—संवत् नहीं दिया गया है। यह अनुमानतः सं० १९८८ में प्रकाशित हुआ था।

—सं० १९९३ में श्री बनवारीलाल गोस्वामी ने 'चतुरासी सेवक वाणी' के नाम से एक संस्करण प्रकाशित किया।

—इसी वर्ष में गोस्वामी रूपलाल जी अधिकारी ने 'श्रीहित सुधा सागर' नाम से एक संग्रह ग्रन्थ छपवाया और उसमें हित चौरासी को भी सम्मिलित किया।

—सं० १९९४ में उक्त गोस्वामी जी ने श्री हित सुधा सागर का एक संस्करण गुजराती अक्षरों में प्रकाशित किया।

—सं० २००९ में बाबा द्वारिकादास ने 'श्री हितामृत सिन्धु' के नाम से चौरासी-सेवक वाणी का प्रकाशन किया।

—सं० २०१४ में ज्योतिषी पं० रामलाल खेवा शर्मा ने 'श्री हितामृत निधि' नाम से हित चौरासी-सेवक वाणी का एक संस्करण प्रकाशित किया।

इसी वर्ष में—प० राममाल वष्णव ने 'श्रीहित सुधा सिंधु' नाम रखकर हित चौरासी-सेवकवाणी का एक सस्करण निकाला, यही सस्करण आजकल बाजार में है।

ग्रन्थ समीक्षा

प्रेमाभक्ति और उसके आलंबन हित चौरासी प्रेमाभक्ति व्यंजक शृङ्गारी काव्य ग्रन्थ है। प्रेमाभक्ति वह भक्ति है जिसमें भगवान के साथ भक्त का सहज प्रेम-सम्बन्ध होता है। वैष्णव-सिद्धान्त में भगवान के दो रूप माने गए हैं—प्रगट और अन्तर्यामी। प्रगट रूप से तात्पर्य अवतरित रूप से है। श्रीमद्भागवत में भगवान के दस प्रधान अवतार माने गये हैं, किन्तु उनमें प्रेमाभक्ति के आलंबन राम और कृष्ण ही बने हैं।

अन्तर्यामी रूप भगवान का अन्तर्यामी रूप वह है जो जीवमात्र के अन्तर में साक्षी रूप से अवस्थित है। विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती में उत्तर भारत में, भगवान के उक्त दोनों रूपों से प्रेम करने वाले भक्त प्रगट हुए और उनके साथ भगवत् प्रेम की दो धारायें उसके दो रूप सामने आये। कबीरदास जी आदि सन्तों का प्रेम अन्तर्यामी रूप के साथ है। उनके अन्तर्यामी 'राम' निर्गुण, अरूप, असीम और अत्यन्त रहस्यमय तत्व हैं अतः कबीरदास जी आदि के प्रेम में उनके प्रभाव से अनुरूप, विशालता, अतीन्द्रियता और रहस्यमयता दिखलाई देती है। इस प्रेम का घटन ज्ञान की विशाल भूमिका पर होता है और दोनों के इस प्रकार मिलने से प्रेम का एक विशिष्ट रूप प्रगट होता है जो अनेक लोगों को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है।

प्रगट रूप किन्तु भगवान के प्रगट रूप के प्रेमियों को इस प्रकार के प्रेम से संतोष नहीं होता। उनकी दृष्टि में इस प्रेम में, विरह की पीड़ा, मिलन का सुख, संपूर्ण आत्म समर्पण आदि सब कुछ होता है किन्तु प्रेमास्पद का 'लाड़ दुलार' नहीं होता। आलंबन की निराकारता और अरूपता इसमें बाधक बनती रहती है। लाड़-प्यार के लिए मनुष्याकार आलंबन की आवश्यकता होती है जो स्वयं देहवान हो और जिसका ग्रहण प्रेमी अपनी स्वाभाविक इन्द्रियों से कर सके। श्रीमद्भागवत (१०-१४-३३) में ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण के दर्शन *करने के बाद अपने साथ एकादश इन्द्रियों के उन अधिष्ठातृ देव*ताओं के भाग्य की प्रशंसा की है जो ब्रजवासियों की इन्द्रियों को चषक बनाकर भगवान मुकुन्द के चरण-कमल मकरन्द का निरन्तर पान करते रहते हैं। सूरदास के भ्रमर गीत में उद्धव जी गोपियों की विरह ज्वाला की शान्ति के लिए उनको श्री कृष्ण के अन्तर्यामी रूप का भजन करने को कहते हैं। किन्तु गोपियाँ विवश हैं। यह जानते हुए भी कि भगवान अन्तर्यामी रूप से उनके अत्यन्त निकट हैं उनके नेत्र प्रगट रूप के दर्शन के लिये ही व्याकुल बने रहते हैं। प्रगट दर्शनों के बिना अन्तर्यामी रूप के चिन्तन में उनको कोई सुख नहीं मिलता।[1] श्रीकृष्ण के इन्द्रिय-गोचर होने के कारण गोपियों के प्रेम में

---

१ ऐसी बातहिं पै रहत।
यदपि मधुप तुम नंदनंदन कौ निरखहि निकट रहत।
हृदय माँझ जो हरिहि बतावत गोपी नाहिं गहत॥
परम चतुर अहनि प्रगट दरसन की ... रूप चहत।
सूरदास प्रभु बिन अवलोके सुख कहुँ न लहत॥

प्यार' जाग उठा था और वे नंदनंदन का इतना दुलार कर सकी थी। गोपियों की श्रीकृष्ण में प्रेमाभक्ति थी और इस भक्ति की 'ध्वजा' गोपियाँ ही मानी गई हैं।[१] गोपियों ने श्रीकृष्ण के साथ प्रेम का बड़ा सहज और चमत्कारपूर्ण निर्वाह किया था।

ऐतिहासिक काल में, दक्षिण के आलवार सन्तों में से कई ने प्रेमाभक्ति का प्रगट आचरण किया और इस भक्ति की ही व्यंजना अपनी रचनाओं में की। इनमें कुलशेखर आलवार एवं गोदा या अण्डाल के नाम उल्लेखनीय हैं। बारहवीं शती के लगभग दक्षिण में ही, लीलाशुक ने श्रीकृष्ण-कर्णामृत नामक ग्रन्थ की रचना की और उसमें गोपियों के प्रेम का अत्यन्त सरस और मर्मग्राही वर्णन किया। लगभग इसी काल में, बंगाल में, गीत-गोविन्द की रचना हुई। इसके बाद बंगाल के ही चण्डीदास ने राधा कृष्ण के शृङ्गारमय प्रेम का विशद एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन अपनी रचनाओं में किया। पन्द्रहवीं शती में मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं को गाया।

भारतीय दर्शन और भाव प्रेमाभक्ति भक्तों के मन में रहने वाला एक भाव है और उसका विकास शुद्ध 'भाव' की भूमिका पर होता है। किन्तु भारतीय दर्शन शास्त्र में भावों के सम्बन्ध में बहुत कम ऊहापोह मिलती है जहाँ कहीं इनका उल्लेख है वह इनकी हेयता प्रदर्शित

---

१ धारा प्रेम की धुजा।
जिन मोहन लिए का अपने उर बिच श्याम भुजा।
(परमानन्द दास)

करने के लिए है। भावों को अध्यात्म चिन्तन में बाधक अत: सर्वथा दमनीय माना गया है। फिर भी भाव हमारे मन के मौलिक अंग हैं और एक पाश्चात्य विद्वान के शब्दों में 'यह सबसे बड़ा विरोधाभास है कि हम भावों का विश्वास तो नहीं कर सकते किन्तु हमको सबसे बड़े सत्य इनके द्वारा ही मालूम होते हैं'[1] हमारा मन वृत्तियों का समूह है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर मनोवृत्तियों के तीन पहलू माने हैं—ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। इन तीन पहलुओं को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता—ऐसा करने से मनोवृत्ति का स्वरूप नष्ट हो जाता है। किन्तु मनुष्य के स्वभाव की रचनागत विभिन्नता के कारण किसी की मनोवृत्तियों में ज्ञानात्मक पहलू की प्रधानता होती है किसी में भावात्मक की। दार्शनिक और कवि इन दो प्रकार के व्यक्तियों के पुरान उदाहरण हैं। दार्शनिक जिस सत्य को बुद्धि के द्वारा समझने की चेष्टा करता है कवि उसने भाव के द्वारा उसका उपभोग करता है। भाव ज्ञान से—जानने से—स्पष्टत: भिन्न वस्तु है। हमारे जानने के दो विषय हैं—बाह्य जगत और आंतर जगत। हम जानने की क्रिया के द्वारा इन दोनों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत भावोद्रेक के समय हमारी चेष्टा कुछ जानने की नहीं होती। भाव का तो हम केवल अनुभव करते हैं और यह अनुभव मोटे तौर पर दो प्रकार का होता है—सुखमय और दुखमय। सुख-दुख का अनुभव भावों के द्वारा ही होता है। मनुष्य के मन में भाव जब किसी सहज वासना को

---

1 This is the greatest poradca The emotions can not be trusi]ed yet it is they that tell us thegreat est truths Don Horald

केन्द्र बनाकर उदित होते हैं तो उनके वेग में बहुत वृद्धि हो जाती है और कम से कम उतने काल के लिये तो वे सम्पूर्ण मन को अपने रंग में रंग डालते हैं—ज्ञान और क्रिया भी उस समय उनके अनुकूल हो चलते हैं। प्रेम भाव का ही उदाहरण लें तो प्रेमोदय काल का ज्ञान स्पष्टतः मन की प्रेम विहीन स्थिति के ज्ञान से भिन्न होता है। प्रेम भाव में से सौंदर्य की एक लहर सी उठती है जो उस समय के सम्पूर्ण ज्ञान को सुन्दर बना देती है। यह लहर ही प्रेमी को कुरूपता में भी सौंदर्य का दर्शन कराती है। इसी प्रकार अन्य भाव भी उद्दीप्त होकर सम्पूर्ण मन पर छा जाते हैं।

ज्ञान और भाव

ज्ञान को रंजित कर देने की उनकी अद्भुत क्षमता के कारण ही भावों को निरपेक्ष विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति में बाधक माना गया है। ज्ञान मार्ग की दृष्टि में भाव ही भव का कारण है और इनका दमन किये बिना भव बाधा शमन नहीं है। यह दृष्टिकोण उन लोगों का है जिनकी मनोवृत्तियाँ ज्ञान प्रधान होती हैं। भाव प्रधान मन वाले लोग सहज रूप से अध्यात्म तत्व के साथ भाव-सम्बन्ध ही जोड़ते हैं और भाव के मार्ग से ही उसको प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। यही भक्ति मार्ग कहलाता है। भक्ति का वर्णन करने वाले पुराणों और आगम ग्रन्थों में भावों को भगवत् प्राप्ति के लिये पूर्ण समर्थ माना गया है। श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि काम, क्रोध, भय, स्नेह, सौहृद आदि भाव श्री हरि में नित्य लगाये जाँय तो वे तन्मयता प्राप्त कराते हैं।[1] इतना ही नहीं

---

१ श्रीमद्भागवत—१०—२९—१५

ब्रह्म संहिता में यह बतलाया गया है कि 'भक्त जिस भाव से भगवान का भजन करता है, वे उसके अनुकूल आकार धारण करके उसको दर्शन देते हैं।'[1]

भाव विवेचन प्राचीन भक्ति ग्रन्थों में भाव का अनुमोदन होते हुए भी उसके स्वरूप विवेचन का कोई सुगठित प्रयास नहीं दिखलाई देता। यह कार्य भरत के नाट्य शास्त्र में हुआ। भरत ने मनुष्य के मन के आठ स्थायी भावों का बहुत अंशों में मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है और नाट्य में विभाव आदि के संयोग से उनकी रस रूप में परिणति प्रदर्शित की है। भक्ति के क्षेत्र में यह कार्य विक्रम की सोलहवीं शती के अंतिम दशक में श्री रूप गोस्वामी द्वारा निष्पन्न हुआ। उन्होंने अपने भक्ति रसामृत सिन्धु में भरत के भाव विवेचन को आधार बना कर भक्ति भाव की एक निश्चित सरणि बनाई है और ग्रन्थ के आरम्भ में ही उत्तमा भक्ति को 'ज्ञान कर्मादि से अनावृत' बतलाया है। 'भक्ति रसामृत सिंधु' की रचना शकाब्द १४६३ (वि० सं० १५९८) में गोकुल में हुई है।[2] इसके सात वर्ष पूर्व सं० १५९१ में श्रीहित हरिवंश गोस्वामी देवबन से आकर वृन्दावन में बस चुके थे और उन्होंने वहाँ प्रेमाभक्ति के एक प्रधान सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर दिया था। लगभग एक ही काल में वृन्दावन में प्रचलित होने वाले दोनों सम्प्रदाय—श्री चैतन्य सम्प्रदाय और राधावल्लभ सम्प्रदाय—प्रेमाभक्ति को

---

१ ब्रह्म संहिता—५५

२ रामाङ्ग शक्र गणिते शाके गोकुलमधिष्ठितेनायम्।
भक्ति रसामृत सिन्धु विटङ्कित क्षुद्र रूपेण॥

सब श्रेष्ठ भक्ति मानते हैं। किन्तु जैसा हम आगे देखेंगे इनका प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण एक दूसरे से भिन्न है और रति का प्रधान विषय भी भिन्न है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में भी शुद्ध भाव की दृष्टि से भक्ति का विवेचन हुआ है। किन्तु इस सम्प्रदाय की भाव-पद्धति का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है, उसको भरत की पद्धति पर आधारित नहीं किया गया है।[1]

प्रेमभाव मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनुष्य के मनमें उदय होने वाले सम्पूर्ण भावों में प्रेम भाव का एक विशिष्ट स्थान माना जाता है मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे प्रेम मनुष्य के मन का एक मिश्र भाव (Complex sentiment) है जो उसकी सहज काम वृत्ति पर आधारित होता है। फ्रायड ने कामवृत्ति को कामतत्व (Libido) के रूप में उपस्थित किया है और उसको मनुष्य का सबसे अधिक मौलिक तत्व उसकी जीवनी शक्ति-माना है। काम में शारीरिकता अधिक होती है और जीव विज्ञान की दृष्टि से उसका प्रधान उद्देश्य सृष्टि क्रिया को अविच्छिन्न बनाये रखना मात्र होता है। किन्तु काम के साथ जब अन्य अनुकूल मानसिक तत्वों का सहयोग होता है तो वह प्रेम कहलाने लगता है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन मानसिक तत्वों के योग से काम वृत्ति का एक विशेष प्रकार का परिपाक ही प्रेम है।

प्रेम के निर्माण में अनेक मूल प्रवृत्तियां (Instincts) और उन पर आधारित करुणा उत्साह विनीतता वत्सलता

---

१ विस्तृत विवरण के लिए देखिये लेखक कृत श्रीहित हरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य पृ० ९८—१०८

साहचर्य आदि भावों का योग रहता है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रेम के घटक तत्वों को गिनाने की भी चेष्टा की है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने प्रेम की रचना विभिन्न नौ तत्वों के योग से मानी है—काम, सौन्दर्यविषयक आसक्ति, आदर भाव प्रवृद्ध सहृदयता, प्रशंसा के प्रति रुचि आत्म-सम्मान स्वामित्व भावना और औदार्य। फिन्स्टर (Pfister) ने किसी सुखदायक विषय के प्रति विवश आकर्षण और आत्म समर्पण को प्रेम कहा है। उन्होंने प्रेम के केवल दो तत्वों पर ही भार दिया है किन्तु हर्बर्ट स्पेन्सर के कई तत्व इन दो के अन्तर्भुक्त हो जाते हैं।

श्रीहित हरिवंश गोस्वामी और प्रेमभाव

श्रीहित हरिवंश गोस्वामी प्रेम को मनुष्य के मन का एक ऐसा मधुर भाव मानते हैं जिसकी उत्पत्ति और स्थिति को अन्य की—विषय की—अपेक्षा होती है। उनकी दृष्टि में प्रेमी और प्रेमपात्र के बीच में रहने वाला उन दोनों का रागात्मक संबंध ही प्रेम है जिसका प्रकाशन उनके मिलन में होता है—मिलन चाहे प्रत्यक्ष हो या मानसिक। अपनी प्रेमोपासना का स्वरूप बतलाते हुए श्री हिताचार्य ने कहा है कि 'उभय रस सिन्धुओं' (राधा-माधव) के मिलन में जो शृङ्गार रूपी कमल खिल रहा है उसके प्रवित मकरन्द का मैं भ्रमर बनकर पान करता हूँ।[1] प्रेम की रचना

---

१ उभय संगम सिन्धु सुरत पूषण बंधु
द्रवत मकरंद हरिवंश अलि पाव।
[हि० चतु ८१]

लिये दो की—आश्रय और विषय की—नितान्त आवश्यकता है।[1]

दैन्य भाव श्री हित हरिवंश गोस्वामी ने प्रेम के एक ही तत्त्व दैन्य पर अधिक भार दिया है और वे इसे प्रेम का एक अत्यन्त मौलिक तत्त्व मानते हैं। प्रेम की निम्नतम स्थितियों से लेकर उसकी उच्चतम स्थितियों तक दैन्य की विविध परिणतियाँ दिखलाई देती हैं। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी प्रेमोन्मुख कामोदय-काल में विनीत बनते देखे जाते हैं। दैन्य विनीतता की इस मूल प्रवृत्ति (Instinct of Submission) पर ही आधारित है। इस 'प्रवृत्ति' से संबंधित भाव 'अहं का निषेधात्मक भाव' (Negative Self feeling) बतलाया गया है और यही दैन्य भाव है। पूर्ण दैन्य में अहं का पूर्ण निषेध होता है। प्रेमपात्र के प्रति आत्म समर्पण और (अपने सुख की कामना छोड़कर) उसके सुख की कामना आदि दैन्य की ही परिणतियाँ हैं। प्रेमी सर्वत्र दीन होता है और प्रेम की वृद्धि के साथ उसके सब काम अहं शून्य और सेवा भाव पूर्ण बनते

---

१ श्री जीव गोस्वामी ने प्रीति और सुख का भेद बतलाते हुये प्रेम की उक्त मौलिक उभयात्मकता को लक्षित किया है। उन्होंने कहा है कि सुख किंवा आनंद उल्लासात्मक होता है अतः उसका केवल आश्रय होता है विषय नहीं होता इसी प्रकार सुख के प्रतियोगी दुःख का भी आश्रय होता है विषय नहीं होता। किन्तु प्रीति का आश्रय भी होता है और विषय भी होता है। इसी प्रकार प्रीति के प्रतियोगी द्वेष के भी यह दोनों होते हैं। अतएव प्रीति के अन्दर सुख रूपी धर्म विद्यमान होते हुए भी केवल सुख किंवा आनंद से इसका वैशिष्ट्य है। प्रीति सन्दर्भ—६१

जात हैं। प्रत्येक प्रकार के प्रेम-सम्बन्ध में दैन्य की परिणतियाँ विद्यमान रहती हैं और उनके ही आधार पर उन प्रेम सम्बन्धों का निर्वाह होता है। हित चतुरासी में, इसीलिये, दैन्य को 'प्रीति की रीति' कहा गया है।[1]

भक्ति का दैन्य — मनुष्य का प्रेम जब यदृच्छा से भगवान के साथ लग जाता है तो उनके रूप की अनन्त प्रेम-सौन्दर्य गरिमा प्रेमी के हृदय में उसके प्रति गौरव भाव जाग्रत कर देती है। यह भाव प्रेमी के अन्दर दैन्य की एक विशेष परिणति का उदय करता है जिसको 'भक्तों का दैन्य' ही कहा जा सकता है। दैन्य का यह रूप उसके अन्य रूपों से विलक्षण होता है। इसके द्वारा प्रेमी और प्रेमपात्र में उपास्य उपासक अथवा स्वामी-सेवक का अविचल सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। गौरव-भाव युक्त प्रेम ही प्रेमाभक्ति कहलाता है और इस भक्ति के पाँचों प्रसिद्ध रसों-शान्त, दास्य सख्य वात्सल्य और उज्ज्वल—में स्वामी-सेवक भाव अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहता है और वही प्रेम को भक्ति बनाये रखता है। किन्तु प्रेमाभक्ति के सब व्यापार प्रेम के निर्देशन में चलते हैं और स्वामी-सेवक सम्बन्ध भी प्रेम के सहज प्रवाह में पड़कर, वहाँ सम्भ्रम शून्य बन जाता है।

मनोविज्ञान और धार्मिक भाव — पाश्चात्य देशों के कतिपय प्रसिद्ध मनोवेत्ताओं—डाक्टर स्टारबक ल्यूबा विलियम जेम्स आदि—ने भक्तों के मनोविज्ञान का अध्ययन

---

1 प्रीति की रीति रंगीलोई जानै।
जद्यपि सकल लोक चूड़ामणि दीन अपनपो मानै॥(हि० च० ६१)

करने की चेष्टा की है और इसके लिए उन्होंने प्रसिद्ध ईसाई भक्तों की जीवनचर्या एवं उनके आध्यात्मिक अनुभवों को आधार बनाया है। इन विद्वानों के अनुसार मनुष्य के अन्दर धार्मिक भाव जैसा कोई स्वतन्त्र मनोभाव नहीं है। मनुष्य के सहज प्रेम भय आदि भाव ही भगवत्तत्व से सम्बन्धित होकर—भगवान विषयक बनकर—'धार्मिक भाव' किंवा भक्ति बन जाते हैं और उनके रूप एवं प्रभाव में एक स्पष्ट विशिष्टता आ जाती है। भगवत्तत्व की अनेक रूपता और भक्तों की स्वभावगत विलक्षणताओं के कारण धार्मिक भावों के अनेक रूप बन जाते हैं और इसीलिए भगवद्-भाव का पूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं बनता।[1]

भक्तिरस और मनोविज्ञान

हिन्दी में जबसे कृष्ण भक्ति काव्य का विशद अध्ययन प्रारम्भ हुआ है अनेक विद्वानों ने प्रेमा भक्ति-रस को समझने की चेष्टा की है। कुछ लोगों ने —म गौड़ीय भक्ति रस ग्रन्थों के आधार में समझा है अन्य ने उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझने का प्रयास किया है। भक्ति रस ग्रन्थों में दी हुई प्रेमा भक्ति की रचना परिपाटी द्वितीय प्रकार के विद्वानों को अमनोवैज्ञानिक और

1 'The pretension under such conditions, to be regourousiy scientific or exact' in our terms would only stamp us as lacking in understanding of our task.

W James The varieties of Religious Experence

P 39

असंगत प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए वत्सल भक्ति-रस ही ले लीजिए। बड़ों का छोटों पर वात्सल्य होता है और छोटों की बड़ों पर भक्ति होती है। ये दोनों एक दूसरे से विरोधी भाव हैं और एक साथ नहीं रह सकते। वत्सल भक्ति रस में इन दोनों भावों का एक साथ रहना स्पष्टतः असंगत है।

देखने में यह पक्ष ठीक मालूम देता है किन्तु काव्य रस के लिए जिस प्रकार एकमात्र सहृदय ही प्रमाण माना जाता है उसी प्रकार भक्ति रस के लिए सहृदय भक्त किंवा रसिक भक्त को ही प्रमाण मानना चाहिए। इस रस का उन्होंने ही आस्वादन किया है और उन्होंने ही अपनी रचनाओं में इसे आस्वादनीय बनाया है। सूरदासजी वत्सल रस के सबसे बड़े गायक हैं। श्रीकृष्ण की बाल-केलि का वर्णन उन्होंने अपनी वत्सल रति के सहारे ही किया है। किन्तु इस बात को वे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलते कि वे अपने 'प्रभु' 'ठाकुर' अथवा 'स्वामी' की लीला गा रहे हैं। विचित्र बात यह है कि उनको इन दोनों भावों वत्सल और दास्य-के साथ रहने में कोई असंगति नहीं लगती। ऐसा क्यों होता है? श्रीकृष्णदास कविराज कहते हैं कि कृष्ण प्रेम का यह एक अपूर्व प्रभाव है जिसके द्वारा गुरु और लघु दोनों ही दास भावापन्न बन जाते हैं।[१] प्रेमी भक्त के हृदय में जब अपने आराध्य के प्रति वत्सल भाव का उदय होता है तो स्वाभावतः उसके अन्दर गुरुता का भाव जाग्रत हो जाता है किन्तु भक्त का सहज दैन्य एवं तज्जनित दासभाव उसको दूर

१ कृष्ण प्रेमेर एई एक अपूर्व प्रभाव।
गुरु सम लघु के कराय दास भाव॥

(च० चरि० प्र० टि० प्र० ६ परिच्छेद)

ऊपर कह चुके हैं, किसी भी स्थिति में विलुप्त नहीं होते और उसके हृदय में वत्सल रति के साथ अविरुद्ध रूप में रहे आते हैं। इसीलिए तो सूरदास जी के बाल क्रीडा के पदों में, उनमें दास भाव के रहते हुए भी, वात्सल्य रस की व्यंजना हो जाती है। भक्ति का सहज दैन्य इन पदों के वात्सल्य को एक विशिष्ट रूप तो प्रदान करता है किन्तु रसानुभव में बाधक नहीं बनता।

आलंबन का महत्व

प्रेमा भक्ति की रचना में आलम्बन का बड़ा गहरा प्रभाव होता है। भगवान से सम्बन्धित होते ही प्रेम कुछ का कुछ बन जाता है। आलम्बन के अद्भुत प्रभाव के कारण ही उज्ज्वल भक्ति रस, पूर्ण रूप से शृङ्गार रस होते हुए भी काम नाशक माना जाता है। श्रीमद्भागवत में व्रज-वधुओं के साथ विष्णु की काम-क्रीडा का श्रद्धान्वित कथन-श्रवण हृद्रोग नाशक बतलाया गया है।[1] हित चतुरासी की फलस्तुति में उसे 'काम पावक कौं पानी' कहा गया है। शृङ्गार रस की यह अद्भुत परिणति आलंबन की अद्भुतता के कारण ही घटित होती है।

श्रीचैतन्य सम्प्रदाय में भगवत् प्रेम

श्री चैतन्य सम्प्रदाय में विष्णु पुराण[2] के आधार पर भगवान की तीन स्वरूप-शक्तियाँ मानी जाती हैं—ह्लादिनी, संधिनी और सम्वित्। इनमें से ह्लादिनी शक्ति के द्वारा भगवान्

---

१ श्रीमद् भाग० १०–३३।४०

२ ह्लादिनी-संधिनी संवित् त्वयि एका सर्व संस्थितौ।
ह्लाद-तापकरी-मिश्रा त्वयि नो गुण वर्जिते॥

फर छिपे हुए मन में ही असाधारण शक्ति का उदय होता है। इसी प्रकार मन में रहने वाले प्रेम को भी दो स्थितियाँ होती हैं—साधारण और असाधारण किंवा लौकिक और अलौकिक। प्रेम के ये दोनों प्रकार एक दूसरे से भिन्न होते हैं किन्तु जहाँ तक प्रेम की प्रकृति का सम्बन्ध है वह दोनों में एक ही दिखाई देती है और इसीलिए लौकिक प्रेम की परिपाटी में जहाँ तहाँ थोड़ा परिवर्तन कर देने से वह भगवत् प्रेम के वर्णन के उपयुक्त बन जाती है। श्रीरूप गोस्वामी ने इसी आधार पर भरत की काव्यरस पद्धति का यत्र-तत्र संस्कार करके उसे भक्ति रस के कथन के योग्य बना लिया है। वास्तव में भगवत्-प्रेम और लौकिक प्रेम एक ही प्रेम-तत्त्व की दो भिन्न छायायें हैं उसी प्रकार जैसे पारमार्थिक ज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान एक ही ज्ञान की दो भिन्न स्थितियाँ हैं।

श्री हिताचार्य ने प्रेम को इस एक अखंड और परात्पर तत्त्व व्यापक सत्ता पर अपने रस-सिद्धान्त का सारा प्रेम किया है। सेवक जी के शब्दों में जो रस रीति सबसे दूर है उसी को श्रीहित हरिवंश ने सारे विश्व में भरपूर माना है और उसी को सजीवन जड़ी बताया है।[1] वे प्रेम को परात्पर तत्त्व मानते हैं और प्रेम शब्द के अपर पर्याय 'हित' शब्द को उन्होंने अपने नाम के साथ संयुक्त किया है। प्रेमी में अथ अपनपे से बाहर निकलकर प्रेमपात्र का

---

१ जो रस रीति सबन तें दूरि—सो सब बिस्व रही भरपूरि।
—मूरि सजीवन कहि हर्ष॥
(ग बा २ ७)

हित का विचार उदित होता है तभी उसके प्रेम में उज्वलता आती है और वह प्रेम कहने योग्य बनता है। पूर्ण हित मय प्रेम ही पूर्ण प्रेम है। प्रेम शब्द व्यापक है उसमें प्रेम के नीचे ऊँचे सभी रूप आ जाते हैं, हित शब्द से प्रेम की केवल उच्च प्रेमपात्र-सुखैक तात्पर्यमयी स्थितियों का ही बोध होता है।

पूर्णतम प्रेम — श्री हित हरिवंश गोस्वामी प्रेम किंवा हित के उपासक हैं। वे जैसा हम ऊपर देख चुके हैं प्रेम को मन की आश्रय-विषयात्मक किंवा युगलात्मक वृत्ति मानते हैं अतः उनकी प्रेमोपासना का अर्थ युगल की— प्रेम को प्रगट करने वाले उसके आश्रय और विषय की—उपासना है। श्री हिताचार्य का उपास्य प्रेम पूर्णतम प्रेम है। श्री ध्रुवदास ने 'पूर्ण कला वाले प्रेम-चन्द्र' के यह लक्षण बताये हैं। वह अत्यन्त उज्वल, निर्मल, सरस स्निग्ध और सहज रूप से सुकोमल होता है। उसमें मधुर मादकता पूर्ण माधुर्य के सम्पूर्ण अंग जगमगाते रहते हैं और अत्यन्त दुर्लभ भाव-तरंग उठते रहते हैं। वह क्षण-क्षण में नवीन बनने वाला एक रस अत्यन्त अनुपम और सहज स्वच्छन्द होता है। उसमें प्रेम की रुचि कभी घटती नहीं है और वह सम्पूर्णतया तत्सुख मय होता है।[1] इसके तटस्थ लक्षणों का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है।

---

१ जहाँ लगि उज्वल निर्मलताई सरस सनिग्ध सहज मृदुताई।
मादक मधुर माधुरी अंगा दुर्लभता के उठत तरंगा॥
नूतन नित्य छिनहिं छिन माहीं एक रस रहत घटत रुचि नाहीं।
पतिहिं अनूपम सहज सुछंदा पूरन कला प्रेम कर चंदा॥
(नेहमंजरी १८०—१८१)

'इस प्रेम का बीज जिस प्रेमी के हृदय में उत्पन्न हो जाता है उसकी विषय वासना नष्ट हो जाती है। उसके मन की चञ्चलता दूर हो जाती है। प्रेम की अद्भुत छटा पर वह अपने तन-मन प्राण न्योछावर कर देता है और भली बुरी किसी बात का चिन्तन नहीं करता। वह निस्पृह और निरीह बन जाता है। उसको प्रेम रस की खुमारी चढ़ जाती है। उसके नेत्र सदैव प्रेमाश्रु पूर्ण बने रहते हैं और उसकी वाणी गद्गद हो जाती है।

इस पूर्णतम प्रेम का पूर्ण एवं एक रस निर्वाह करने वाले उसके सर्व श्रेष्ठ विषय और आश्रय श्री राधा और श्याम सुन्दर हैं। यह दोनों प्रेम-स्वरूप हैं और प्रेम के ही अनादि अनंत आस्वाद में रत हैं। प्रेम की उपासना वास्तव में प्रेमी की उपासना है और श्री हिताचार्य ने पूर्ण प्रेम की उपासना के लिये इन दोनों पूर्ण प्रेमियों को अपना उपास्य बनाया है।

युगलात्मक परतत्त्व

परतत्त्व के युगलात्मक होने की मान्यता अपने यहाँ आरम्भ से ही चली आ रही है और इसके प्रमाण प्राचीन उपनिषदों में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। उदाहरण के लिये 'बृहदारण्यक' उपनिषद में कहा गया है 'यह आरम्भ में इस प्रकार स्थित था जैसे गाढ़ आलिंगन में आबद्ध स्त्री-पुरुष होते हैं। इस स्थिति में रमण का-लीला का अवकाश नहीं था अतः उसने अपने आपको दो भागों में विभक्त कर लिया और पति-पत्नी बन गया'।[1] स्पष्ट परतत्त्व का

---

१ स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। बृ॰ चतुर्थ ब्राह्मणम् ३

इस प्रकार का दर्शन भाव के मार्ग से हुआ है। भावपूर्ण नेत्रों ने ही उसको पति-पत्नी के मिश्रित रूप में देखा है। पति-पत्नी प्रेम भाव के द्वारा दो से एक बनते हैं और प्रेमास्वाद के लिये रमण के लिये एक रहते हुए दो बने रहते हैं। प्रेम के अतिरिक्त पति-पत्नी को इस स्थिति में रखने का अन्य कोई स्वाभाविक मार्ग नहीं है।

इस प्रकार की श्रुतियों के अतिरिक्त, उपनिषदों में कुछ श्रुतियाँ ऐसी मिलती हैं जो परतत्व को शक्तिमान के रूप में उपस्थित करती हैं। श्वेताश्वतर की प्रसिद्ध श्रुति में परतत्व की तीन पराशक्तियों-ज्ञान क्रिया और बल-का उल्लेख किया गया है।[1]

भाव प्रधान और ज्ञान प्रधान श्रुतियाँ

पुराणों एवं तन्त्रों में परतत्व को युगलात्मक मानकर जब दार्शनिक सिद्धान्तों एवं साधन पद्धतियों की रचना हुई तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें प्रथम प्रकार की श्रुतियों में निर्दिष्ट पति-पत्नी को द्वितीय प्रकार की श्रुतियों के आधार पर शक्ति-शक्तिमान मान लिया गया और दोनों प्रकार की श्रुतियों का समन्वय कर लिया गया। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर यह दोनों प्रकार की श्रुतियाँ मन की दो प्रकार की वृत्तियों पर आधारित मालूम होती हैं। प्रथम प्रकार की श्रुतियों का उद्गम भाव प्रधान वृत्तियों से हुआ है और द्वितीय प्रकार की श्रुतियों का ज्ञान प्रधान वृत्तियों में। प्रथम श्रेणी की श्रुतियों में स्वरूप भाव प्रधान हैं और द्वितीय श्रेणी की श्रुतियाँ

1 परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
श्वेता० ६—८

के ज्ञान-प्रधान । इन दोनों दृष्टियों का समन्वय किया जा सकता है किन्तु इसमें क्षति दोनों को उठानी पड़ी है । भाव के क्षेत्र में शक्ति-शक्तिमान् जैसा कोई सम्बन्ध नहीं है और ज्ञान के क्षेत्र में पति-पत्नी जैसा ।

यह हो सकता है कि दो व्यक्ति पति-पत्नी होने के अतिरिक्त परस्पर शक्ति-शक्तिमान अथवा प्रकृति-पुरुष अथवा अन्य कुछ भी हो किन्तु प्रेम भाव का सम्बन्ध केवल उनके पति-पत्नी रूप के साथ है अन्य किसी रूप से नहीं । प्रेम की दृष्टि में उनके अन्य सब रूप विजातीय हैं । प्रेम के क्षेत्र में इनके आने से गड़बड़ ही मचेगी कोई लाभ नहीं होगा । इसमें न शक्ति-शक्तिमान् रूप ही शुद्ध रूप में रह सकेगा और न पति-पत्नी रूप ही ।

भाव और शक्ति

पुराणों और तन्त्रों के आधार पर सोलहवी शती में जब प्रेमासक्ति के दो नवीन सम्प्रदायों—वल्लभ और चैतन्य—की स्थापना हुई तो उनमें भी युगल शक्ति-शक्तिमान के रूप में ही गृहीत हुए । साथ ही इन सम्प्रदायों ने युगल को प्रेम-रूप किंवा रस-रूप में भी देखा एवं उनकी प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रेम को ही बताया । इन में प्रेम भाव एवं शक्ति शक्तिमान् की योजना का समन्वय होना ही था और उसके अनुसार जैसा हम ऊपर देख चुके हैं प्रेम को भगवान की विशेष शक्ति सावित्री का परिणाम माना गया और इस प्रकार प्रेमभाव और शक्ति अभिन्न मान लिए गए । किन्तु हम जिन दो वस्तुओं को शक्ति और भाव कहते हैं वे एक दूसरे से स्पष्ट भिन्न हैं । प्रेमभाव मन का एक विकार है शक्ति हमारी क्रियात्मकता का नाम है । यदि क्रियात्मकता का क्षेत्र का विस्तृत बनाकर भाव को उसकी परिधि में से लिया

जाय तब भी इतना तो स्पष्ट है कि भाव केवल क्रिया नहीं है उससे विलक्षण भी कुछ है और उसकी यह विलक्षणता ही उसका रूप है, विशेषता है। भावोदय काल में ज्ञान और उसकी क्रिया दोनों ही भाव के रंग में रँगकर उसके अनुसार बनते दिखाई देते हैं।

श्रीहित हरिवंश ने युगल को केवल पति-पत्नी रूप में देखा है। उनके श्रीकृष्ण शक्तिमान् नहीं हैं उनकी श्रीराधा शक्ति नहीं हैं। वे केवल प्रेमी और प्रेमपात्र हैं और सहज दाम्पत्य बन्धन में आबद्ध हैं। उनमें प्रेम-सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है प्रेम-स्वरूपता से भिन्न कोई रूप नहीं है और शृङ्गारमयी प्रेम-क्रीडा के अतिरिक्त अन्य कोई लीला नहीं है। यह युगल अनादि अनन्त रूप में प्रेम का नित्य नूतन आस्वादन करते रहते हैं।[1] ये दोनों प्रेम के खिलौने हैं और प्रेम

---

१ आदि न अन्त विलास करैं दोउ लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।
नई नई भाँति नई छबि कांति नई नवला नवनेह बिहारी॥
एक सुख चाहि हिय चित चाहि परस्पर प्रीति सु सर्वसु हारी।
रूप इक गाथ करैं मृदु हास सुशोभित प्रेम अनूप कथा री॥

(श्री ध्रुवदास भजन सिंगारसत
तृतीय गणना)

मा ही खेल खेल रहे हैं ।[२]

श्री राधा श्यामसुन्दर में प्रेम जनित क्रिया एवं ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी क्रिया अथवा ज्ञान का अवकाश नहीं है। इन दोनों का प्रेम उस स्थिति का है जहाँ प्रेमानुभव के अतिरिक्त अन्य कोई अनुभव नहीं रहता। सृष्टि-रचना, अनुग्रह-निग्रहादि भगवत् कार्य उनकी इस एकान्त प्रेम-स्थिति का स्पर्श नहीं करते। प्रेमभाव की इस एकान्त स्थिति की तुलना कुछ अंशों में ज्ञान की उस स्थिति के साथ की जा सकती है जहाँ सर्व भेद शून्य एक मात्र ज्ञान अवशिष्ट रह जाता है और उसका कोई सीधा सम्बन्ध सृष्टि रचना आदि के साथ नहीं होता। यह ज्ञान की निर्गुण एवं एकान्त स्थिति है। प्रेमभाव की निर्गुण स्थिति तो सम्भव नहीं है क्योंकि वह नित्य सगुण पदार्थ है। किन्तु उसकी एकान्त स्थिति संभव है और उसका दर्शन 'हित चौरासी' में वर्णित नित्य प्रेम-विहार में होता है।

---

२ प्रेम के खिलौना दोऊ खेलत हैं प्रेम खेल
    प्रेम फूल फूलनि सौं प्रेम सेज रची है।
प्रेम ही की चितवनि मुसिकनि प्रेम ही की
    प्रेम रंगी बात करें, प्रेम केलि मची है॥
प्रेम के तरङ्गनि में प्रीतम परे हैं दोऊ
    प्रेम प्यारे भये प्यारी हित हिय बसी है।
हित प्रेम प्रेम भरी प्यारी सखी देखें खरी
    हित चितवनि ढरि आनि उर मची है॥
        (श्री प्रभुदास भजन सिद्धान्त तृतीय प्रकरण)

युगल का एकान्त प्रेम स्वरूप

युगल का शक्ति-शक्तिमान रूप उनके उक्त एकान्त प्रेम स्वरूप से भिन्न है। इस रूप का सम्बन्ध सृष्टि-रचना आदि कार्यों के साथ है और यही पक्ष स्वयं पूर्ण भगवत् स्वरूप है। किन्तु युगल का प्रेम स्वरूपता उनके सब रूपों में अनुस्यूत रहती है और जिन रूपों में वह अधिक उद्भासित हुई है वे प्रेमी भक्तों द्वारा सदैव वंदनीय और आस्वादनीय रहे हैं। श्री हिताचार्य के लिये युगल के सब रूप और उनकी सब लीलायें वंदनीय हैं किन्तु आस्वादनीय युगल का एकान्त प्रेम स्वरूप ही है।

यह एकान्त प्रेम विहारी राधा श्यामसुन्दर परमाद्भुत प्रेम सौन्दर्य और गुणों के धाम हैं। इनके प्रेम को व्यास ने 'और ही भाँति' का बतलाया है। प्रेम का यह प्रकार कहीं दिखलाई नहीं देता। उदाहरण के लिये शृङ्गार के दो भेद संयोग और विप्रलम्भ—प्रसिद्ध हैं। भक्ति रस काव्यों में भी राधा कृष्ण की दो प्रकार की लीलाओं का वर्णन किया गया है। किन्तु इन युगल का प्रेम इस प्रकार का है कि उसमें स्थूल विरह का अवकाश नहीं है। इस प्रेम में परस्पर आसक्ति इतनी बढ़ी हुई है कि श्री राधा श्यामसुन्दर एक क्षण के लिये भी एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। 'यह दोनों परस्पर अंसों पर भुजा रख हुए एक दूसरे के मुख चन्द्र को और एक टक देखते रहते हैं और उनके रस मत्त लोचन, तृषित चकोरों की भाँति परस्पर रूप-माधुरी का पान करते रहते हैं।'[1] ऐ

---

1 अंसनि पर भुज दियें बिलोकत इंदु बदन विवि ओर।
करत पान रसमत्त परस्पर लोचन तृषित चकोर॥
(हि० चो० ११)

प्रेमियों के बोध में स्थूल विरह की कल्पना भी भय जनक है—
प्रेम हू को विरह कहत यहां डर भाव।[१]

फिर भी युगल का प्रेम एक पक्षीय नहीं है, उसमें शृंगार के उक्त दोनों पक्ष सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। किन्तु ये यहां स्थूल संयोग और विरह की भांति भिन्न कालों में अनुभूत नहीं होते, एक क्षण में ही अनुभूत होते रहते हैं। यों राधा श्यामसुन्दर विरह की तीव्र प्रेम सुधा सञ्चर अपने अविचल संयोग का आस्वाद करते रहते हैं। 'जिस प्रेम में देखना ही विरह के समान विकल और बेचैन हो वहां के प्रेम की बात कोई क्या कहे![२] 'युगल नेत्र भर भर कर एक दूसरे की ओर देखते रहते हैं और कभी अपने को संयुक्त नहीं मानते।[३]

पूर्णतम प्रेम के एकान्त आश्रय होने के कारण यह दोनों पूर्ण सम सौन्दर्य के भी अनन्य धाम हैं। सौन्दर्य की सब कलायें—नृत्य, संगीत आदि—भी इनमें पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। 'इनके अत्यन्त लावण्य रूप और अभिनय गुणों की समता कोटि कामदेव भी नहीं कर सकते।'[४] जब सुन्दरी राधा और हरि मिलकर धमार (वसंत राग) गाते हैं तो खग मृग पुलकित हो

---

१ श्रीमद् बदास

२ देखिबो यहां विरह सम होई।
तहां को प्रेम कहा कहै कोई॥

३ कबहुं संजोग न मानहीं करत भरि भरि नैन।

४ अति लावण्य रूप अभिनय गुन नाहिन कोटि काम समतूलहि।
(हि ० ची ० १२)

जाते हैं और जल का बहना बंद हो जाता है।'[१] 'जब यह दोनों गोरी राग का अलाप चारी करते हुये सहज रूप से अपने बड़े बड़े नेत्रों का ऊपर का भार उठा कर भृकुटि धनुष पर दवाते हैं तो उनकी यह नयन-बाण मन रूपी मृग का बल पूर्वक वेधन कर देती है।[२]

राधा श्याम सुन्दर नित्य दंपति हैं। इनकी नित्यता का अर्थ नित्य नवीन होना है। इसीलिये, इनका नेह नित्य नया है राग रंग नया है और स्वयं ये भी नित्य नये हैं।[३] इन सम्पूर्ण नवीनताओं को लेकर ये अपने नित्य दाम्पत्य का नित्य नवीन-आस्वाद करते रहते हैं।

श्री हित हरिवंश गोस्वामी ने युगल को समान प्रेमी एवं समान सौंदर्य-गुण शाली चित्रित किया है। इनके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि कौन की प्रीति किससे अधिक है। पिय—नागरी में प्रेम की समान 'अति फूल' (अत्यन्त फूलन) है।[४] सौंदर्य और गुण भी इनके समान हैं। छबीले श्याम सुन्दर मर्कत मणि हैं और श्री राधा

---

१ गावत मु हरि हरि सरस धमारि-पुलकित खग मृग बहत न बारि।
(हि० च० २७)

२ दोऊ मिलि चाचर गावत गोरी राग अलापि।
मानस मृग बल बेधत भृकुटि धनुष दृग चापि॥ (हि च २७)

३ नयौ नेह नवरंग नयौ रस नवल श्याम वृषभानु किशोरी।
[हि च १४]

४ हृदय अति फूल रसमूल पिय नागरी
हरिनि-वरि मन मनौ विविध गुन रागिनी। [हि च ४६]

कथन गाते हैं। श्री हित हरिवंश का जोरी (युगल) एक दूसरे के गुण गण से मात हैं—पराजित हैं।१

इन दोनों की एक ही मन प्रकार वय है, एक ही रुचि है, एक सा स्वभाव है। यह साँवल गोर हंस-हंसिनी जल और तरंग की भाँति एक होते हुए भी उन्हीं के समान सदैव दो बने रहते हैं। यह दोनों शृङ्गार की विमलतम मूर्ति हैं। इनके शृङ्गार में प्रेम (रति) इतनी उज्ज्वल और मांगलिक स्थिति में रहता है कि लौकिक शृङ्गार की समान काम कोटि-कोटि कामदेव उसको देखकर लज्जित हो जाते हैं। इस शृङ्गार की एक छटा मात्र रसिकों के हृदय में सहज प्रेम और सौंदर्य का अनावरण कर देती है। इसीलिये श्री हिताचार्य ने इस शृङ्गार रसमयी मूर्ति को जगत पावनी कहा है।२

श्रीकृष्ण भारतीय धर्म और साहित्य में श्रीकृष्ण के दर्शन मुख्यतः दो रूपों में होते हैं। एक महाभारत में वर्णित लोक नायक लोक शास्ता एवं दूसरा पुराणों में चित्रित प्रेम स्वरूप। ये दोनों रूप भक्ति के आलंबन बनते आये हैं—ज्ञान कर्म मिश्रित भक्ति का लोक नायक रूप और शुद्ध भक्ति किंवा प्रेमासक्ति का प्रेम स्वरूप। श्रीकृष्ण का लोक नायक रूप बहुत कुछ ऐतिहासिकता से आबद्ध है और उसमें भक्त की भावना को उन्मुक्त विहार का अवकाश नहीं मिला है। श्रीकृष्ण का प्रेम स्वरूप शुद्ध भाव क्षेत्र की वस्तु है और प्रेमा भक्ति ने अपना समग्र दिव्य भाव हृदय का लेकर श्रीकृष्ण के इस रूप का बड़ा विशद आख्यान किया है।

---

१ वर्णों श्रीहित हरिवंश जोरी उभय गुन गन मात। [हि॰ च॰ २८]
२ मूरति रस रूप भरी जगत पावनी। [हि॰ च॰ ११]

श्रीकृष्ण की प्रेम स्वरूपता का प्रकाश उनकी ब्रज लीलाओं में हुआ था। मध्य युगीन कृष्ण भक्तों ने ब्रज जनों के श्रीकृष्ण से सम्बन्धित प्रेमानुभव को अपने अनुभव पथ में लाकर अपनी रचनाओं में उसका गान किया। इसी समय श्री हित हरिवंश गोस्वामी ने श्री राधा की प्रधानता को लेकर ब्रज लीलाओं के समानान्तर निकुंज लीलाओं का प्रवर्तन किया। इन लीलाओं में श्रीकृष्ण की प्रेमस्वरूपता की एक नई छटा सामने आई। ब्रज लीलाओं में वे सब गोपीजनों के अनन्य प्रेम पात्र हैं, निकुंज लीलाओं में वे श्री राधा के अनन्य प्रेमी हैं। प्रेम पात्र श्री राधा हैं। श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण लीलाओं में प्रेम के विषय श्री कृष्ण हैं और गोपीजन उसका आश्रय हैं। वहाँ प्रेमियों की विभिन्न दशायें गोपीजनों में दिखाई गई हैं। निकुंज लीलाओं में विषय श्री राधा हैं और आश्रय श्रीकृष्ण। हित चौरासी में श्रीकृष्ण आश्रय—प्रेमी—रूप में वर्णित हुए हैं।

प्रेमियों की एक स्वाभाविक दशा उनकी दीनता है। ब्रज लीलाओं में प्रेमी होने के नाते गोपियाँ सहज रूप से दीन हैं। निकुंज लीलाओं में यही स्थिति श्याम सुन्दर की है। वे सकल लोक चूड़ामणि होकर भी अपने को दीन मानते हैं। उनको दीन बनाने वाली उनकी प्रेम विवशता है। प्रेम विवश बनकर उनको अपने से सम्बन्धित सब कुछ विस्मृत हो गया है और वे अनन्य गति बन गए हैं। यमुना पुलिन के निकुंज भवन में जब श्री राधा मान ठानती हैं तो कोटि कामिनि कुल के निकट रहते हुए भी श्यामसुन्दर का धीरज नहीं बँधता। श्री हिताचार्य ने कहा है कि अनेकों के साथ की जाने वाली प्रीति चपल मधुकर के नेह के समान नश्वर होती है। प्रीति का सङ्कुचित स्थिति-

मर्यादा—को छोड़कर जो श्यामसुन्दर के अनन्य प्रेमी रूप को पहिचानता है वही चतुर है।[1]

एकांत प्रेम वीथिका में विचरण करने वाले श्यामसुन्दर का प्रेम अत्यन्त अद्भुत है। उनका और श्री राधा का सम्बन्ध मीन और जल जैसा है, वे उनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। उनके नेत्रों की यह सामान्य स्थिति बन गई है कि वे श्री राधा के मुख कमल पर भ्रमर की भांति अटके रहते हैं अन्यत्र कहीं नहीं जाते। जब पलकों के गिरने से दर्शन में एक क्षण की भी बाधा उपस्थित होती है तो वे अत्यन्त आतुर होकर अकुलाने लगते हैं और निमेष मात्र का अन्तर भी उनको सैकड़ों कल्पों के अन्तर से अधिक प्रतीत होता है।[2] श्री राधा के सहज रूप-सौन्दर्य को देखकर उनका मन अनायास गतिहीन बन जाता है।● उनके भृकुटि-विलास मन्द मुस्कान और हाव

---

१ अन्तर मैं चलत मधुकर ज्यौं आन-आन नहिं जानै।
जय श्री हित हरिवंश चतुर सोई मार्गहि छाँड़ि मेंड़ पहिचानैं।
[हि० च० ४१]

२ देखौ माई इन नैननि की बान।
ये अलि प्रिया बदन अम्बुज रस अटके अनत न जात।
जब-जब पलक लगत मधुप लट अति आतुर अकुलात।
लपट लपट निमेष पलक ते अन्तर कल्प समान॥ [हि० च० ६]

● इस वर्णन में भी हित हरिवंश ने सौंदर्य की व्याख्या की है। 'सुन्दर वह है जिसको देखकर मन की गति पंगु बन जाय वह उसमें डूब जाय।' आचार्य शुक्ल ने इसी व्याख्या को स्वीकार किया है। उनके शब्दों में "जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार-परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु

भाव को देखकर तो वे अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं और उनकी उस समय की स्थिति को देखकर सखीजन करुणा से आप्लुत हो उठती हैं।[1]

श्री श्यामसुन्दर मदन को मोहित करने वाले त्रिभंगी हैं। वीतराग मुनियों के मन को भी वे श्याम रंग में रंग डालते हैं। मुनियों का सघन परमानंद ही उनके रूप में प्रगट हुआ है।[2] वे रसिक रस सागर हैं और अपने अनन्य प्रेम सौंदर्य को लेकर यमुना पुलिन पर उद्‌घोषित होते रहते हैं—रास विलास करते रहते हैं।[3] अपने अनन्य दासों के भजन की निष्पत्ति के लिये यह लीला नट

हमारे लिये सुन्दर कहा जायगी। सुन्दर वस्तु को देखकर प्रमाता की तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।

१ जब ही मंद्य भई मन की गति बिनु उद्दिम रतिधाम।
तब की कहा कहौं जब दिव प्रति चाहत भृकुटि विश्राम ॥
सघन मनमथ ब्याज मुख दरसन मुनिजनि कहुत विराम।
हा हरिवंश अनीति रीति हित कत आवत तन श्याम ॥

[हि च ३१]

२ मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनि मन रंगी।
मोहन मुनि सघन प्रगट परमानंद गुन गंभीर गुपाला।

[हि च ३१]

३ यमुना पुलिन रसिक रस-सागर रास रच्यो वन माहीं।

[हि च ६१]

प्रगट हुये है¹ और निखिल ब्रह्मांड में अपने प्रेम का विस्तार करते रहते है ।²

राधा वल्लभीय प्रेम-सिद्धान्त में जैसा हम ऊपर देख भी आये चुके हैं श्री राधा का एकान्त प्रेम स्वरूपा माना जाता है शक्ति अथवा प्रकृति नहीं माना जाता। किन्तु भारतीय मानस में वेदान्त के शक्ति शक्तिमान सांख्य के प्रकृति पुरुष के साथएक बनकर बद्धमूल होगए है और जहांकहीं भी भगवत् तत्व का ग्रहण युगल रूप मे हुआ है वहीं उनके बीच में उपर्युक्त नामा सम्बन्ध मान लिये गए हैं। शिव शक्ति और राधा कृष्ण दोनो युगलात्मक अद्वय तत्व हैं और स्वभावत दोनों का ग्राह्य रूप मिलते जुलते आधारों में विकसित हुआ है। शक्ति और प्रकृति दोनो नारी तत्व माने जाते है और श्री राधा भी नारी हैं। इसी नाते श्रीराधा के वर्णन में उन अनेक प्रतीकों का ग्रहण हुआ है जो शक्ति के वर्णन में भी प्रयुक्त होते आये हैं।

उदाहरण के लिए हित चौरासी के कई पदों में राधा श्यामसुन्दर की हृदयहुलासिनी कहा गया है। काश्मीर शैव दर्शन से सम्बन्धित एक ग्रन्थ में ब्रह्माण्ड गर्भिणी शक्ति को परमेश्वर रूप हृदय की हृदय बतलाया गया है।³ यहां राधा कृष्ण और शिव-शक्ति की उज्ज्वलता की व्य [illegible] के लिए

---

1 श्याम अनन्य भजन रस कारन हित हरिवंश प्रगट लीला नट ।
[हि च १४]
हित हरिवंश [illegible] प्रगट [illegible] ।
[हि च १९]

3 ब्रह्माण्ड गर्भिणी व्याप्त व्यापिनि [illegible] ।
परमेश्वर हृदयस्य शक्तिः हृदयं [illegible] ॥
[illegible]

हैं सन्यासी के प्रतीक व्यवहार में लाये गये हैं। किन्तु हित चौरासी में वे जहाँ उज्ज्वल प्रेमरस की उज्ज्वलता के प्रतीक हैं वहाँ स्तव चिन्तामणि में शुद्ध सत्त्व के। अतः प्रतीकों अथवा बाह्य आकार की समानता के आधार पर, सदैव वस्तु की समानता सिद्ध नहीं होती।

राधाकृष्ण उपासकों एवं शाक्त उपासकों के उपास्य तत्व एक दूसरे से भिन्न हैं। एक जगह उपास्य शक्ति है दूसरी जगह प्रेम। यह दोनों एक ही परम रहस्यमय तत्वके आवश्यक अङ्ग हैं और पूर्ण के अङ्ग होने के नाते अपने आप में पूर्ण हैं। किन्तु शक्ति और प्रेम भाव एक दूसरे से विलक्षण पदार्थ हैं यह हम ऊपर देख चुके हैं। इनकी उपासना प्रणाली भी एक दूसरे से भिन्न है। शक्ति की उपासना तांत्रिक पद्धति से होती है और प्रेम स्वरूप राधा-कृष्ण का अनुशीलन प्रेम भाव के स्वाभाविक मार्ग से किया जाता है।

चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीराधा को शक्ति माना जाता है किन्तु वे परम प्रेम स्वरूपा ह्लादिनी शक्ति हैं। प्रेम का सार महाभाव बतलाया गया है और महाभाव का मूर्तरूप श्रीराधा हैं। अतः इनकी उपासना शुद्ध भाव के मार्ग से ही होती है।[1]

---

१ राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य एवं वाणीकार श्री रूपलाल गोस्वामी (सं० १७३७—१८ १) ने अपने कई पदों में श्री राधा को 'अह्लादिनी शक्ति' कहा है। उनके यशस्वी शिष्य बाबा हित वृन्दावनदास ने भी श्री राधा को अह्लादिनी शक्ति कहकर ही गाया है किन्तु यह दृष्टिकोण संप्रदाय में स्वीकृत नहीं हुआ। बाबाजी के जीवन काल में ही रच जाने वाले सिद्धान्त ग्रन्थ 'धर्म बोधिनी' में इसका ग्रहण नहीं किया गया और इसके बोह

वल्लभ सम्प्रदाय में भी मद्भागवत[1] के आधार पर श्री राधा को भगवान की स्वरूप सिद्धि माना जाता है।[2] यह सिद्धि निरन्तर साम्यासिद्धा है। इसके साथ भगवान अपने धाम में नित्य रमण करते रहते हैं। राधा कृष्ण की इसी परम प्रेममयी शाश्वत-क्रीड़ा का वर्णन अष्टछाप के भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है और इस सम्प्रदाय में उपासना भी प्रेमा भक्ति की प्रणाली से ही होती है।

यदि उक्त सम्प्रदायों एवं राधा वल्लभीय सम्प्रदाय को केवल बाहर से देखा जाय तो निस्संदेह उनमें और शाक्त सम्प्रदायों में कई बातों में समानतायें दीखती। इसके आधार पर उक्त सम्प्रदायों के ऊपर शाक्त प्रभाव दिखलाया जा सकता है। एक अंग्रेज विद्वान् ने इन तीनों सम्प्रदायों और रामानुज सम्प्रदाय को 'वैष्णव शाक्त' कह दिया है।[3] राधा वल्लभीय सम्प्रदाय में श्रीराधा की प्रधानता है अतः अन्य एक विद्वान् ने इस सम्प्रदाय को तो सीधा 'शाक्त' ही बतला दिया है।[4]

याहित हरिवंश गोस्वामी की दृष्टि में श्रीकृष्ण जैसे अद्भुत और अनन्य प्रेमी के अगाध प्रेम का एक मात्र विषय

दिन बाद गोस्वामी रसीमास जी ने अपने मस्तुन पव नियम सिद्धान्त में श्रीराधा शक्ति के होने का खंडन पूर्ण रूप से कर दिया।

१ द्वि० स्क० अ० ४ श्लोक १४।

२ देखिये कल्याण के शक्त्यंक में देवर्षि पं० श्री रमानाथ जी भट्ट का "श्रीकृष्ण की शक्ति श्री राधिका" शीर्षक लेख। पृष्ठ १८३।

3 The Hindu Religions of India A Barth, Page 236

4 The Religious Quest of India, J N Farquhar P 318

श्रीराधा हैं। ये प्रेम के सागर हैं, वे सौंदर्य की सीमा हैं। ये अपने असीम प्रेम के साथ अपार सौंदर्य लिए हुए हैं, वे अपने अपार सौंदर्य के साथ असीम प्रेम लिए हुये हैं। श्रीराधा का सौंदर्य अप्रतिम है इसीलिये उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तीनों लोकों के कविकुल इस चक्कर में हैं कि वे श्रीराधा के अङ्गों की सहज माधुरी को क्या कहकर समझायें। प्रत्येक वस्तु तुलना के द्वारा स्पष्ट होती है और श्रीराधा के सौंदर्य की कोई तुलना है नहीं। एक श्यामसुन्दर ऐसे हैं जिनके साथ श्रीराधा की तुलना की जा सकती है किन्तु वे उनके भृकुटि विलास से विवश बनकर सदैव मृग के समान थकित बने रहते हैं। 'ऐसी स्थिति में यदि कोई करोड़ों कल्पों तक जीता रहे और उसको करोड़ों जिह्वायें मिल जाँय तो भी वह श्रीराधा के सुन्दर मुख कमल की शोभा का वर्णन नहीं कर सकता।'[1]

श्रीराधा के सहज सुन्दर अङ्ग बिना आभूषणों के भूषित हैं। वे नृत्य और संगीत की कलाओं में अत्यन्त कुशल हैं और 'कोक-संगीत-रस सिंधु' में मानों डुबाकर निकाली गई हैं। उन्होंने मोहन के चंचल और रसिक मन मधुप को अपनी कुच कोर पर समेट रखा है और उनके चपल नेत्रों को अपने विभिन्न सुन्दर अङ्गों के साथ विविध बन्धन डोरियों से बाँध रखा है।[2] एक ही साथ अनेक जगह बंध जाने के कारण श्यामसुन्दर के नेत्र सदैव व्याकुल बने रहते हैं।

श्रीराधा भोली इतनी हैं कि श्याम सुन्दर की कौस्तुभ मणि में अपना प्रतिबिंब देखकर भ्रम में पड़ जाती हैं और मा

---

१ हि० चौ० ५२
२ हि० चौ० ८२

कर बैठती हैं।[1] और चतुर इतनी हैं कि उनके नृत्य में स्वर ताल का अद्भुत चमत्कार देखकर नटवर श्यामसुन्दर आश्चर्य से 'हो-हो' कह उठते हैं।[2] वे रूप में चतुरता में, शील में, शृंगार में और गुणों में सब व्रज सुन्दरियों से श्रेष्ठ हैं।[3] उनके हाव भाव भृकुटि भंग से निसृत माधुरी तरंगों ने कोटि कामदेवों के मन को मथित कर रखा है।[4] उनकी सरस गति और आवेश-युक्त हास-परिहास में जो लावण्य उमड़ता है वह श्याम सुन्दर के रोम रोम में बिंध गया है।[5] वे प्रेम ज्वर से जर्जरित श्याम की संजीवन बूटी हैं।[6]

प्रेमपात्र का सम्पूर्ण गौरव उनमें विद्यमान है। वे यद्यपि प्रेम रसासव के पान से विवश हैं किन्तु अपनी 'गति' कभी नहीं भूलतीं[7]—उनका प्रेम कभी श्यामसुन्दर के प्रेम की भाँति आतुर नहीं बनता। उनकी प्रेमपात्रोचित 'ठसक' सदैव ज्यों की त्यों बनी रहती है। श्रीमद्भागवत के रास-वर्णन में श्री श्याम

---

१ हि० चौ० ७

२ ताल बंधान मान में नागरि देखत श्याम कहत हो-होरी।
हि० चौ० ७५

३ हि० चौ० २१

४ सुरत रंग अंग-अंग हाव भाव भृकुटि भंग
माधुरी तरंग मथत कोटि मार री। हि० चौ० ७६

५ हि० चौ० ४६

६ हि० चौ० ७०

७ यद्यपि अति अनुराग रसासव पान विवश नाहिन गति भूली।
हि० चौ० ७०

सुन्दर वेणु-नाद करते हैं और गोपियों को जिनमें श्रीराधा भी हैं, अपने देह-गेह भूल जाते हैं और वे 'मनोहर मदन गोपाल' से मिलने के लिये चल पड़ती हैं। । 'हित चौरासी' के पदों में श्री राधा पर वंशी का कोई इस प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत सखियों को वेणु-ध्वनि की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए वंशी के गुणों का बखान उनके आगे करना पड़ता है और फिर भी वे उलझन में मुसकाती हैं।[1]

श्रीहिताचार्य ने श्रीराधा का चित्रण उपकारक के रूप में किया है, उपकृत श्रीश्यामसुन्दर हैं। उनके अनुसार 'मनोहर श्याम अनन्य दासों के भजन रस के लिये प्रगट हुए हैं और 'आनन्द निधि' श्रीराधा 'मोहन' के हित प्रकट हुई हैं।[2]

श्रीराधा हिताचार्य की 'प्राणनाथ' हैं सर्वस्व हैं, किन्तु अकेली श्रीराधा की उपासना उनको अभीष्ट नहीं है। उनके उपास्य युगल ही हैं। वास्तव में वे प्रेमोपासक हैं रसोपासक हैं, रसिक हैं और युगल के बिना प्रेम की अथवा शृंगार रस की स्थिति संभव नहीं है यह हम ऊपर देख चुके हैं। अतः 'श्याम-ललना' मिलकर ही उनके हृदय को आलोकित करते हैं[3]

१- वेणुधुनि गौरसाल बांसी मुनिय नयों परमान। हि० चौ० २८

२ दास अनन्य भजन रस कारन प्रगटे लाल मनोहर प्यार।

स्फु० वा० ११

अनन्य निधि मोहन हित श्यामा प्रान दलनिधि सुकुमार।

स्फु० वा० ११

३ (जय श्री) हितहरिवंश श्याम ललना मिलि हिली सिराउत मोर।

हि० चौ०

श्रौर हंस-हंसिनी समाज' ही उनके नैत्रों में श्रृंगार रस के सार का सिंचन करता है।[1]

निरय विहार का रूप श्रीराधा श्याम सुन्दर नित्य लीला परायण हैं लीला से विरहित इनकी कोई स्थिति नहीं है। इन दोनों को नित्य एकरस प्रेमावेश बना रहता है श्रौर उसका श्रास्वाद यह प्रतिक्षण करते रहते हैं। परस्पर प्रेम के श्रास्वाद में जिन क्रियाश्रों का प्रकाशन होता है वे सब मिलकर प्रेमलीला कहलाती हैं। युगल का प्रेमास्वाद नित्य है श्रत उनकी लीला नित्य है। नित्य वही है जो नित्य वर्तमान है। श्रीहिताचार्य ने श्रपने श्रनेक पदों को वतमानकाल वाची 'श्राज' शब्द से प्रारम्भ किया है। जैसे 'श्राज गोपाल रास रस खेलत' 'श्राज नीकी बनी राधिका नागरी' 'श्राज सखी बन में जु बने प्रभु' इत्यादि। नित्य में न गत है न श्रनागत उसमें केवल वर्तमान है श्रौर वह नित्य रूप से श्रवस्थित है।

नित्य बिहारी राधा श्यामसुन्दर की लीलाश्रों में पुराण वर्णित लीलाश्रों की भाँति 'प्रगट' (श्रवतार काल की लीला) श्रौर 'श्रप्रगट' (नित्य गोलोकधाम की लीला) का विभाजन नहीं है। इसमें उक्त दोनों प्रकार की लीलाश्रों का समन्वय दिखलाई देता है एक श्रोर तो यह लीलाएं श्रप्रगट लीलाश्रों की भाँति नित्य श्रविच्छिन्न रूप से चलने वाली हैं श्रौर दूसरी श्रोर प्रगट लीलाश्रों की भाँति भूतल पर श्राचरित होती हैं। भेद इतना ही

---

१ लाड़िली किशोर राज हंस-हंसिनी समाज
सींचत हरिवंश नयन सुरस सार री। हि० चौ० ३६

है कि प्रगट लीलाएँ केवल द्वापरान्त में पृथ्वी पर आचरित हुईं थीं और इन लीलाओं को, श्रीहित हरिवंश ने नित्य भूतल-स्थित माना है। उन्होंने युगल को यह कहकर असीस दी है कि 'यह जोरी विपिन भूतल पर सतत अविचल धनी रहे।'[1] विपिन 'भूतल' से उनका तात्पर्य भूतल स्थित वृन्दावन से है। उनकी दृष्टि में भूतल स्थित वृन्दावन ही नित्य वृन्दावन है—मायिक दृष्टि से वह मायिक दिखलाई देता है और प्रेमपूर्ण दृष्टि से नित्य प्रेम स्वरूप। श्री हिताचार्य ने भूतल स्थित वृन्दावन में बसने वाले क्रूर और पापियों को भी वस्तु रूप में देखकर अपना आराध्य बताया है।[2]

इस प्रकार रसमयी लीला की सखियाँ एक आवश्यक सखी अंग हैं। वे श्रीराधा किंकरी हैं और उनका सम्पूर्ण सौभाग्य श्रीराधा के चरणों के साथ बंधा हुआ है। इनके अगाध राधा प्रेम और श्रीराधा की अगाध दासी वत्सलता ने मिलकर इन दासियों को सखी पद पर प्रतिष्ठित किया है। वे श्रीराधा के साथ समानता का व्यवहार करती हैं और अनेक बार उनसे 'तू' कहकर मानती हैं।[3] श्रीहिताचार्य ने सखिय

१ हित हरिवंश विपिन भूतल पर संतत अविचल जोरी।

(हि० चौ ७०

२ ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां संभाष्य दृश्याश्चये सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिमम।

(रा० सु० २६४)

३ तू तीज मगी मपानी तै मगी एतौ न मानी

हौं तो भी बाम हारी जुगनि जुगनि सौं।

(हि० चौ० २

को 'हित चिंतक मित्र मेरी' कहा है। उनके जीवन का एकमात्र प्रयोजन श्रीराधा का हित चिंतन है। श्रीराधा का सबसे बड़ा हित, स्वभावतः, उनके सुहाग की वृद्धि में है। श्याम सुन्दर का श्रीराधा के प्रति नित्य वर्धमान प्रेम और श्रीराधा का परम उदार प्रेम प्रतिदान ही श्रीराधा का सुहाग है। सखियाँ इस सुहाग की वृद्धि के लिये नई-नई प्रेम लीलाओं का आयोजन करती हैं और उनमें श्रीराधा को सुखी देखकर उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता।[1] सखियाँ नृत्य, संगीत, अभिनय, प्रसाधन कला आदि में अत्यन्त कुशल हैं। श्रीराधा का मान-मोचन सखियों की सेवा का प्रधान अंग है और इस कार्य को वे बड़ी चिन्मयता से करती हैं।[2]

श्रीहिताचार्य ने अपने पदों की रचना सखीभाव से भावित होकर की है। सखी भाव गोपीभाव से भिन्न वस्तु है। गोपियाँ अपनेको श्रीकृष्णकान्ता मानती हैं, सखियाँ श्रीराधाकिंकरी हैं और उन्हींके नेह नाते से श्रीश्यामसुन्दर उनको प्रिय हैं—श्यामसुन्दर के साथ उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। राधा कृष्ण की शृंगार लीला का वर्णन करने वाले पुराणों और सम्प्रदायों में इन गोपियों में से अनेक श्रीराधा की सखी मानी जाती हैं और उनके यूथ में सम्मिलित हैं। वे श्रीराधा कृष्ण की प्रणय लीला में सहायक बनती हैं और उन दोनों का सुरत देख कर मुदित होती हैं। श्रीकृष्ण पूर्णतया श्री राधा की ओर आकृष्ट होते हुए

---

१ हित चिंतक निजु चरितु उर आन द न समात।
निरखि निपट नैननि सुख तृण तोरति बलि जात॥ (हि० चौ० २०)

२ हि० चौ० ८३

भी अपने प्रति इन गोपियों के प्रेम का सिंचन करते रहते हैं। अष्टछाप के महात्माओं ने श्रीराधा कृष्ण की शृंगार लीला में इसी प्रकार की सखियों का वर्णन किया है। ये सब श्रीकृष्ण भोक्ता हैं और श्रीराधा के प्रति सौहार्द होने के कारण सब उनकी सखा हैं। श्रीरूपगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में कुछ ऐसी सखियों का वर्णन किया है जो श्रीराधा की दासी हैं और मंजरी कहलाती हैं। श्री राधा जिस प्रकार श्री कृष्ण के प्रति आसक्त हैं उसी प्रकार उनकी ये दासियाँ-मंजरियाँ भी हैं। श्रीराधा और मंजरियों के आराध्य 'भगवान व्रजेश तनय' ही हैं। मंजरियाँ श्रीराधा दास्य के द्वारा श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। उनकी भी प्रधान रति श्रीकृष्ण में ही है। नित्य विहार में सखियों की प्रधान रति श्री राधा के चरणों में है। वे श्रीकृष्ण से श्रीराधा के चरणों में 'स्थिति' प्रदान करने की प्रार्थना करती हैं।[1] अतः ये सखियाँ मंजरियों से भिन्न हैं।

नित्य विहार में सखियाँ ही जीव के प्रवेश का एक मात्र द्वार हैं। सखियों के भाव के माध्यम से ही उपासक इस अनादि-अनन्त प्रेम लीला में प्रवेश करता है। उन्हीं की भाँति वह भी राधा-कैंकर्य को ग्रहण करता है और उन्हीं से राधा श्याम सुन्दर के अद्भुत प्रेम को समझ कर उसकी ओर आकर्षित होता है। सखियों की कृपा के बल से ही वह प्रेम मार्ग में अग्रसर होता है और अन्त में सखी स्वरूप को प्राप्त होकर इस लीला का एक अंग बन जाता है। यह स्मरण रहे कि सम्प्रदाय में सखी

---

१ निज प्रियतमा पदे रसमय दशानु स्थितिम्।

(राधारस सुधानिधि श्लोक १११)

भाव केवल मानसिक भाव माना जाता है और इसके प्रत्यक्ष आचरण को गर्हित समझा जाता है।

वृन्दावन नित्य विहार का दूसरा आवश्यक अंग वृन्दावन है। यहाँ की सघन कुंजों में ही प्रेम की वह परमाद्भुत क्रीड़ा होती रहती है जिसको देखकर खग, मृग, आदि तारा गण चकित रह जाते हैं और यहीं के सुभग यमुना तट पर रस के अथाह सागर तरंगायित होते रहते हैं। वृन्दावन में शरद और बसंत नित्य वर्तमान रहते हैं और अनेक भाँति के पुष्पों के सौरभ से अलिकुल मत्त बना रहता है। यहाँ शिखिकुल आनन्द से अधीर बनकर नृत्य करता रहता है और रुचि दायक शीतल मंद सुगंध पवन सतत बहता रहता है। यहाँ एक अत्यन्त कमनीय और नवल निकुंज मन्दिर सुशोभित है जिसका शृंगार-प्रसाधन नित्य कोटि कामदेवों का समूह करता रहता है।[1] यहाँ श्रीराधा श्याम सुन्दर के हृदयों में भरा हुआ महा शृंगार रस ही बाहर उछल कर यमुना के रूप में तीव्रवेग से प्रवाहित हो रहा है।[2] और इसी 'वर यमुना जल' से वृन्दावन का सिंचन होता है।

वृन्दावन की अधिष्ठात्री वृन्दा सखी हैं और वृन्दावन सखी तत्व की ही एक परिणति है। सखियों की भाँति वृन्दावन भी प्रधानतः श्रीराधा से सम्बन्धित है। इसकी प्रत्येक क्रिया श्री राधा के सुख के लिये होती है। वृन्दावन भी राधा माधव की प्रीति के नवीन विलासों का प्रयोजक बनता रहता है।

---

१ हि० चौ० २७

२ श्री हित हरिवंश गोस्वामी रचित श्री यमुनाष्टक श्लोक ३

उसके द्वारा रचित लीला का एक उदाहरण श्रीहिताचार्य ने दिया है। वृन्दावन की कुंजों की रचना विविध प्रकार से हुई है और जिस प्रकार की कुंज में राधा मोहन प्रवेश करते हैं वहां उनकी लीला का रूप वैसा ही बन जाता है। वृन्दावन के लता वृक्षों के पत्र और पुष्प इतने निर्मल हैं कि श्याम श्यामा उनमें नखसिख प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। किन्तु एक कुंज ऐसी है जहाँ सखियों और श्यामसुन्दर के प्रतिबिम्बों में भी श्रीराधा ही दिखलाई देती हैं। सर्वत्र श्रीराधा के प्रतिबिम्ब देखकर श्याम सुन्दर भ्रम में पड़ जाते हैं और बिम्ब से—स्वयं श्रीराधा से—न मिल सकने के कारण व्याकुल बन जाते हैं और एक सुन्दर लीला की सृष्टि हो जाती है।[1]

श्रीराधा के साथ जितना सुदृढ़ संबंध वृन्दावन का है उतना ही श्रीराधा का वृन्दावन के साथ है। श्रीहिताचार्य ने श्रीराधा को एकमात्र वृन्दावन में गोचर बताया है।[2] और उनकी प्राप्ति के लिए कोटि जन्मान्तरों में भी एकमात्र वृन्दावन भूमि पर आशा लगाई है।[3]

एक स्थान में तो उन्होंने यहाँ तक कहा है कि वृन्दावन की कृपा के बिना श्रीराधा नाम का स्फुरण भी संभव नहीं है।[4] श्री राधा और वृन्दावन का ऐसा सुदृढ़ संबंध देख कर, श्रीहिता

---

१ हि० चौ० ४७

२ राधा-रस सुधा-निधि श्लोक ७९

३ राधा रस सुधानिधि श्लोक २११

४ यत्नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य।(रा. र. सु. श्लोक २१)

चार्य द्वारा स्थापित श्री राधा की प्रधानता वाली रस रीति को 'वृन्दावन रस' कहा जाता है ।१

वृन्दावन रस

वृन्दावन-रस पद्धति भरत की रस-पद्धति की भाँति रस निष्पत्ति का विवेचन करने वाली कोई परिपाटी नहीं है । यह प्रेम-परिपाटी है और इसमें प्रेम के स्वरूप उसकी विभिन्न दशाओं और कोटियों का विवेचन हुआ है । राधाकृष्ण के द्वारा नित्य आस्वादित होने के कारण यह प्रेम ही रस रूप है और इसी आधार पर इस प्रेम परिपाटी को रस-पद्धति कहा जाता है । गौड़ीय भक्ति-रस सिद्धान्त भी प्रधानतः प्रेम-सिद्धान्त ही है । प्राचीन परम्परा का अनुसरण करके इस संप्रदाय में रस निष्पत्ति का निरूपण भी किया गया है किन्तु महत्व इसके प्रेम-सिद्धान्त को ही दिया जाता है और वही संसार को इसकी सबसे बड़ी देन मानी जाती है ।

श्री हिताचार्य ने अपनी रचनाओं में और विशेषतः अपने ब्रजभाषा पदों में वृन्दावन रस पद्धति का 'आचरण'२ दिखलाया है— इस विशिष्ट प्रेम परिपाटी को विशेष प्रकार की लीलाओं में आचरित होता दिखलाया है । राधा श्याम सुन्दर जिस प्रकार मनुष्याकार होते हुये भी मनुष्य से अनेक बातों में भिन्न हैं उसी प्रकार उनकी यह शृङ्गार केलि भी लौकिक काम केलि जैसी होते हुये भी उससे भिन्न है । श्री हित हरिवंश गोस्वामी को इस

---

१ वृन्दावन रस मोहि भाव हो ।
ताकी हौं बलि जाउं रसी री जो मोहि आनि सुनाव हो ॥
(व्यास वा. पृ ७१)

२ जुग रीति आचरण प्रगट रस रूप किये । हि. बा. प्र १२

प्रेम-केलि की अनुभूति जितनी तीव्र और प्रत्यक्ष है उतनी ही ममय वाणी उनको इसका वर्णन करने को मिली है। उन्होंने बड़ी सरस और समृद्ध ब्रज भाषा में इस शृङ्गार केलि के अनेक चमत्कार पूर्ण चित्र हित चौरासीमें उपस्थित किये हैं। श्रीराधा सौन्दर्य के तो वे अनुपम शिल्पी हैं। उनके श्री राधा रूप के वर्णनों के द्वारा ब्रज-वाणी का अभूत पूर्व शृङ्गार हुआ है और उसकी व्यजना शक्ति में वृद्धि हुई है।

हित चौरासी के पदों में कहीं भी आयास किंवा श्रम दिखलाई नहीं देता। इस प्रकार के काव्य का जन्म हृदय की भाव विवशता में से होता है। संवेदन शील मन जब किसी सरस और सुन्दर भाव के द्वारा अभिभूत हो जाता है तो उसमें से काव्य वैसे ही फूट निकलता है जैसे बसंतागम में कोकिल के कंठ से गान। परशुराम चतुर्वेदी ने भी हित हरिवंश गोस्वामी के काव्य की आलोचना करते हुये कहा है, 'हित हरिवंश 'रंग विलास' की विविध चेष्टाओं का ऐसा चित्रण करते हैं जैसे वे उन्हें प्रत्यक्ष देख रहे हैं और उनमें से किसी एक का भी वर्णन न करना उनके लिये असह्य हो सकता है।[१]

इस निबंध में हित चौरासी की भाव-दृष्टि को समझने की चेष्टा की गई है उसकी अभिव्यंजना शैली का विवेचन साहित्यिक विद्वान ही कर सकते हैं। इस दिशा में मेरे द्वारा की गई चेष्टा क्षम्य मात्र होगी।

—ललिताचरण गोस्वामी

---

१ हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह पृ० ८० ८१

* श्री हित चौरासी *

❀ श्रीहित चतुराशी ❀

॥ राग विभास ॥

जोई-जोई प्यारौ करै सोई मोहि भावै[१],
भावै मोहि जोई सोई-सोई करैं प्यारे ॥
मोकों तौ भावती ठौर प्यारे के नैननि में,
प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैननि के तारे ॥
मेरे तन-मन-प्रान हू तें प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मोसों हारे ॥
जै श्रीहित हरिवंश हंस-हंसनी साँवल-गौर,
कहौ कौन करै जल-तरङ्गनि[२] न्यारे[३] ॥१॥

प्यारे बोली भामिनी[४] आजु नीकी जामिनी[५],
भटि नवीन मेघ सौं दामिनी[६] ॥
मोहन रसिक-राइरी[७] माई, तासौं जु-
मान करै ऐसी कौन कामिनी ॥
जै श्रीहित हरिवंश श्रवण सुनत प्यारी,
राधिकारमण सौं मिली गज-गामिनी[८] ॥२॥

१-अच्छा लगता है २-जल और तरंग को ३-अलग ४ भामि
५-रात्रि ६-बिजली, ७-रसिक शिरोमणि, ८-हाथी जैसी चाल वाली ।

प्रात समय दोऊ रस-लंपट[1],
सुरत-जुद्ध जय-जुत अति फूल[2] ॥
श्रम-वारिज घनबिन्दु[3] बदन पर,
भूषण अंगहि अंग बिकूल[4] ॥
कछु रह्यौ तिलक सिथिल[5] अलकावलि[6],
बदन[7] कमल मानौं अलि[8] भूल ॥
जै श्रीहित हरिवंश मदन रंग रँगि रहे,
नैन-बैन कटि सिथिल दुकूल[9] ॥३॥
आजु तौ जुवति तेरौ बदन आनन्द भरयौ,
पिय के संगम[10] के सूचत सुख-चैन ॥
आलस-बलित-बोल[11] सुरंग[12] रँगे कपोल,
बिथकित[13]अरुण[14]उनींदे[15] दोऊ नैन ॥
रुचिर[16]तिलक-लेश[17]किरत[18]कुसुम-केश[19],
सिर सीमंत[20] भूषित मानौं तैं[21] न ॥
करुणाकर[22] उदार राखत कछु न सार[23],
दसन-बसन[24] लागत जब दैंन ॥

१—रसलोभी २—प्रेम-क्रीड़ामें समान रूप से विजयी होने के कारण अत्यंत प्रसन्न, ३—पसीने की बड़ी बूँदें, ४—अस्तव्यस्त ५—ढीलो, ६—केशपाश ७—मुख, ८—भौंरा ९—पट १०—मिलन, ११—आलसयुक्त वचन १२—लाल, १३—थके हुए १४—लाल १५—नींद से भरे हुए, १६—सुन्दर, १७—तिलक का थोड़ा सा अंश १८—गिरते हैं १९—केशों में गुथे हुए फूल, २०—माँग २१—तुम, २२—करुणा सागर २३—दोष, बाकी, २४—अधर।

काहे कौं दुरत[1] भीत पलटे प्रीतम चीर,
बस किये श्याम सिखै सत-मैन[2] ।
गलित[3] उरसि-माल[4], शिथिल किंकिनी-जाल[5],
जै श्रीहित हरिवंश लता-गृह[6] सैन ॥४॥

आज प्रभात लता-मन्दिर में,
सुख बरसत अति हरषि[7] युगल वर ।
गौर श्याम अभिराम[8], रङ्ग भरे,
लटकि-लटकि पग धरत अवनि[9] पर ।
कुच-कुमकुम[10] रञ्जित[11] मालावलि,
सुरत नाथ[12] श्रीश्याम धाम[13] धर ।
प्रिया प्रेम के अङ्क[14] अलङ्कृत[15],
चित्रित चतुर-शिरोमणि निजकर[16] ॥
दम्पति[17] अति अनुराग मुदित[18],
कल[19] गान करत मन हरत परस्पर[20] ।
जै श्रीहित हरिवंश प्रसंस-परायन[21],
गायन अलि सुर देत मधुर तर ॥५॥

१-छिपती है २-मैंने प्रेम सिखाये ३-टूट गई ४-हृदय पर धारण की हुई माला, ५-घुंघरू युक्त करधनी, ६-लता-मन्दिर ७-प्रसन्न होकर, ८-सुन्... ९-भूमि, १०-रोली ११-रँगी हुई, १२-रसिक-शिरोमणि, १३-हृ... १४-चिन्ह, १५-सुशोभित, १६-अपने हाथ से १७-युगल १८-प्रस... १९-सुन्दर, २०-एक दूसरे का, २१-प्रशंसा में पूर्ण हृदय वाला ।

कौन चतुर जुवती प्रिया,
जाहि मिलत लाल चोर ह्वै रैन।
दुरवत क्यों अब दुरै[1] सुनि प्यारे,
रंग[2] में गहिले[3] चैन में नैन॥
उर नख-चंद[4] बिराजे[5]-
पट[6] अटपटे से बैन।
जै श्री हित हरिवंश रसिक
राधापति प्रमथित मैन[7] ॥६॥

॥ राग बिलावल ॥

आजु निकुंज मंजु में खेलत,
नवल किशोर नवीन किशोरी।
अति अनुपम अनुराग परस्पर,
सुनि अभूत[8] भूतल[9] पर जोरी॥
विद्रुम[10]फटिक[11]विविध[12]निर्मित[13]घर[14],
नव कर्पूर पराग न थोरी।
कोमल किसलय[15]शयन सुपेसल[16],
तापर श्याम निवेशित[17] गोरी॥

---

१ छिपाये से क्यों छिपे, २ अनुराग, ३ भींजे हुए, ४ हृदय पर नख के चिन्ह, ५ दूसरे के, ६ वस्त्र, ७ काम से व्याकुल बने हुए, ८ नवीन ९ भूमि, १० मूंगा, ११ स्फटिक मणि (सफेद रंग की), १२ बहुत प्रकार के १३ बने हुए, १४ भूमि, १५ कोमल १६ कामल, १७ विराजमान की।

मिथुन[1] हास-परिहास परायन,
पीक कपोल कमल पर झोरी[2]।
गौर-श्याम भुज कलह मनोहर
नीवी-बंधन[3] मोचत[4] डोरी ॥
हरि उर मुकुर[5] विलोकि अपनपौ[6]
विभ्रम[7] विकल मान जुत भोरी[8]।
चिबुक[9] सुचारु प्रलोइ[10] प्रबोधत[11],
पिय प्रतिबिंब जनाय निहोरी[12]।
नेति-नेति बचनामृत सुनि सुनि,
ललितादिक देखत दुरि चोरी।
जै श्रीहित हरिवंश करत कर-धूनन[13],
प्रणयकोप[14] मालावलि तोरी ॥७॥

अति ही अरुण तेरे नैन नलिन[15] री।
आलस जुत इतरात रंग-मगे,
भये निशि जागर[16] मखिन[17] मलिन री।

---

१ युगल, श्यामा श्याम २ पीक का कपोल ऐसे मालूम हो
है जैसे कमल पर माख, मुलम्मा चढ़ा दिया हो। ३ कटिबंधन, ४ खोल
हैं, ५ दर्पण, ६ अपना प्रतिबिम्ब (परछाईं), ७ भ्रम ८ श्री राध
९ अधो, १० पकड़कर ११ समझाते हैं १२ नम्र भावना क
१३ हाथ झटकाना, १४ प्रेम का कोप, १५ कमलनी, १६ जागने
१७ आलस से।

सिथिल पलक में उठति गोलक[१] गति
बिधयौ[२] मोहन मृग सकत चलि न री।
जै श्रीहित हरिवंश हंसकलगामिनि,
संभ्रम[३] देत भ्रमरनि अलिन[४] री ॥८॥

बनी श्रीराधा मोहन की जोरी।
इंद्रनीलमनि[५] स्याम मनोहर, सात कुम्भ[६] तनु गोरी॥
भाल बिसाल तिलक हरि, कामिनि चिकुर[७] चन्द्र[८] बिच रोरी।
गज-नायक प्रभु चाल, गयदनि-गति[९] वृषभानु किसोरी॥
नील निचोल[१०] जुवति, मोहन पट पीत[११] अरुण सिर खोरी[१२]।
जै श्रीहित हरिवंश रसिक राधापति सुरत रंग[१३] में बोरी[१४]॥९

आजु नागरीकिसोर भाँवती[१५] विचित्र जोर[१६],
कहा कहौं अंग-अंग परम माधुरी।
करत केलि[१७] कंठ मेलि बाहुदंड[१८], गंड-गंड[१९]-
परस[२०], सरस रास-लास[२१] मंडली जुरी॥
श्यामसुंदरी बिहार, बाँसुरी मृदंग तार[२२],
मधुर घोष[२३] नूपुरादि किंकिनी चुरी[२४]।

१–तारा (आँखों का) २–बैंध दिया, ३–भ्रम, ४–भौंरों को। ५–गहरे नीले रंग की मणि, ६–सोना ७–बाल, ८–चन्द्रिका, ९–हथिनी जैसी चाल १०–आच्छादन वस्त्र ११–पीला, १२–पाग १३–प्रेम रंग १४–रंगी हुई, १५–मन को भाने वाली, १६–जोड़ी, १७ क्रीड़ा, १८–एक दूसरे के कंठ में हाथ डालकर, १९–एक दूसरे के कपोल, २० स्पर्श करके, २१–नृत्य, २२–तार के बाजे सारंगी आदि। २३–शब्द २४–चूड़ी,।

दं श्री देखत हरिवंश आसि, निलनी सुर्यंग[1] चाल,
वारि फेर देत[2] प्राण देहसों जुरी[3] ॥१

मञ्जुल कल कुञ्ज देश, राधा हरि विशद[4] वेश,
राकार[5] नभ[6] कुमुद-बन्धु[7] शारद जामिनी
साँवल दुति[8] कनक अंग[9], विहरत मिलि एक संग,
नीरद[10] मणि नील मध्य लसत दामिनी
अरुण पीत नवदुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभयुत[11] शीत अनिल[12] मन्द गामिनी[13]
किसलय दल रचित शैन, बोलत पिय चाटु बैन[14],
मान सहित प्रतिपद[15] प्रतिकूल कामिनी
मोहन मन मथत मार[16], परसत कुच नीवि-हार,
वेपथयुत[17] नेति-नेति बदति[18] भामिनी
नर वाहन प्रभु सुकेलि, बहुविधि भर[19] भरत झेलि[20],
सौरत रस[21] रूप नदी जगत-पावनी[22] ॥२

१–सुर्यंग सुप की २–न्यौछावर कर देती है ३–शरीर से द्विग
(अता भवन की ओर में), ४–सुन्दर, ५–पूर्णिमा, ६–आकाश ७–चन्द्र
८–नीरदाभसुन्दर, ९–गोरे व न वाली की राधा, १०–मेघ, बादल, ११–
युत, १२–पवन, १३–मन्द गति से चलने वाली, १४–खुशामद करने के
१५–हरक्षिण में, १६–प्रेम मय काम १७–कम्पयुत १८–बोलती
१९–भ म का भार, २०–झेलती हैं, २१–श्रृंगार रस, २२–पवित्र करने वाल
* गोस्वामी हितरूपलालजी की टीका (सं० १७६०) में 'मञ्जु' पाठ है।

चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान,
रास रच्यौ स्याम तट कलिंद-नंदिनी[१]।
निर्तत युवती समूह, राग रंग अति कुतूहल[२],
बाजत रसमूल मुरलिका अनंदिनी॥
वंशीवट निकट जहाँ, परम रमनि[३] भूमि तहाँ,
सकल सुखद मलय[४] बहै वायु मन्दिनी।
जाती[५] ईषद[६] विकास कानन[७] अतिशय सुवास,
राका निशि[८] शरद मास विमल चंदिनी॥
नरवाहन प्रभु[९] निहार, लोचन भरि घोष-नारि[१०]
नख सिख सौंदर्य काम दुख-निकंदिनी[११]।
विलसहु भुज ग्रीव मेलि, भामिनि सुख सिंधु झेलि,
नव निकुंज स्याम केलि[१२] जगत बंदिनी[१३]॥१२

नन्द के लाल हर्यौ मन मोर।
हौं अपने मोतिन लर पोवति,
कांकर डारि गयौ सखि भोर॥१॥
बंक बिलोकनि चाल छबीली,
रसिक सिरोमणि नंद किशोर।

---

१ यमुना की, २ कौतूहल, ३ रमणीय सुंदर, ४ चन्दन की गंध युक्त, ५ चमेली, ६ थोड़ा-सा ७ श्री वृन्दावन ८ पूर्णिमा की रात्रि, ९ श्री श्यामसुन्दर, १० श्री वृषभानु नन्दिनी, ११ नाश करने वाली, १२ शृंगार क्रीड़ा, १३ नमस्कार करने योग्य।

प्राण रवन सों मयौव करत,
आगस[1] बिनु आरस[2] ॥
पिय चितवत तव चन्द्रवदन तन,
तू अध मुख[3] निज चरण निहारत[4] ।
वे मृदु चिबुक प्रलोय[5] प्रलोयत[6] ,
तू भामिनि कर सों कर टारत[7] ॥
विवस अधीर विरह अति कातर,
सर-औसर[8] कछुव[9] न विचारत ।
ज श्रीहितहरिवंश रहसि प्रीतम मिलि,
तृषित नम काहे न प्रतिपारत[10] ॥७५॥

नागरी निकुंज ऐन[11] किसलय दल रचित शैन
कोक-कला-कुसल कुँवरि अति उदार री ।
सुरत रंग अंग-अंग हाव भाव भृकुटि भंग,
माधुरी तरंग मथत कोटि मार री ॥
मुखर[12] नूपुरनि सुभाव किंकिनी विचित्र राव,
'विरमि विरमि'[13] नाथ वदत वर विहार री ।

१–अपराध के बिना, २–सं० आलस्य पूरी (मान), ३–नीचे को मुख करके, ४–रम रही हो, ५–मसला कर ६–मनमाते हैं, ७–टरती है, ८–मनन समनय, ९–कुछ भी १०–पालन करती, ११–गृह १२–शब्दाय मान, १३–विराम करो ।

लाड़िलौ किसोर राज हंस-हंसिनी समाज,
सींचत हरिवंश नयन सुरस-सार[१] री ॥७६॥

अटकत फिरति जुवति रस फूली ।
लताभवन में सरस सकल निसि,
पिय सँग सुरत हिंडोरे[२] झूली ॥
जद्यपि अति अनुराग रसासव[३] पान,
बिवस[४] नाहिन गति भूली ।
आलस-बलित[५] नैन बिगलित[६] लट
उर पर कछुक कंचुकी खूली[७] ॥
मरगजि[८] माल सिथिल कटि बंधन
चित्रित कज्जल पीक दुकूलौ[९] ।
बैंधो हितहरिवंश मदन-सर जर जार[१०]
विथकित श्याम सजीवन मूली[११] ॥११॥

सुघंग नाचत नवल किसोरी ।
थेई-थेई कहत चहत प्रीतम दिसि,
वदनचंद्र मनौं तृषित चकोरी ॥

१-उज्ज्वल रस का सार, २-रस हिंडोले, ३-रसामृत, ४-वशी ५-आलस्य से घिरे हुए ६-छूटी हुई ७-खुली हुई ८-सुगंधित मुरझी हुई ९-वस्त्र, १०-सब रोम छिन्न हुआ ११-जड़ी ।

ताम दंपान मान म नागरि[१]
देखत श्याम कहत हो हो री ।
जयश्री हितहरिवंश माधुरी अंग-अंग,
अवरस[२] लियो मोहन चित चोरी ॥७८॥

रहसि रहसि[३] मोहन पिय के संग री,
लडैंती अति रस लटकत ।
सरस सुघग अंग में नागरि,
थेई थेई कहत अवनि पद पटकत ॥
कोक कलाकुल जानि-सिरोमनि,[४]
अभिनय कुटिल भृकुटियनि मटकति ।
विवस भये प्रीतम अलि लंपट,
निरखि करज नासापुट[५] चटकत ॥
गुन गन रसिक राइ चूड़ामणि,
रिझवत पदिक[६] हार पट झटकत ।
जयश्री हितहरिवंश निकट दासी जन,
लोचन-चषक रसासव गटकत[७] ॥७९॥

१—चतुर, २—अपहरयो, ३—एकांत में, ४—ज्ञानियों में श्रेष्ठ
५—पुटकी, ६—वक्षस्थल पर धारण होने वाला आभूषण, ७—पान करती है।

मल्लयो[1] सु कनक-बल्लरी[2] तमाल श्याम संग,
लागि रही अंग-अंग मनोभिरामिनी ।
बदन ज्योति मनों मयंक, अलक तिलक छबि कलंक,[3]
छपति[4] श्याम अंक मानों जलद दामिनी ॥
विगत-बास[5] हेम खंभ[6] मनों भुवंग बेनी दंड,
पिय के कंठ प्रेम पुंज कुंज कामिनी ।
ऐसो शोभित हरिवंश नाथ साथ सुरत आलसवंत,
उरज कनक कलस राधिका सुनामिनी ॥८०॥

राग केदारी ।

वृषभानुनंदिनी मधुर कल गावै ।
विकट औघर तान चर्चरी ताल सौं,
नंदनंदन मनसि मोद उपजावै ।
प्रथम मज्जन चारु, चीर कज्जल तिलक,
श्रवन कुंडल, बदन चंद्रनि लजावै ॥
सुभग नक बेसरी,[7] रतन हाटक जरी,
अधर बंधूक,[8] दसन कुंद चमकावै ॥

१–आलिंगन २–स्वर्ण-लता, ३–श्याम चिन्ह ४–छिपती है ५–वास रहित, ६–स्वर्ण-स्तंभ के समान तन ७–नासिका का भूषण, ८–दुपहरिया का फूल ।

वलय कंकन बाहु, उरसि राजत हार,
कटिव[1] किंकिनि, चरन नूपुर बजाय।
हँस कल गामिनी मथत मद कामिनी,
नखनि मदयंतिका[2] रंग रुचि द्यातौ[3] ॥
नित नागर रमस, रहसि नागरि नवल
चन्द्र-चासोर[4] विविध भेदनि जनावौ।
कोक विद्या[5] विदित, भाइ अभिनय निपुन,
भ्रूविलासनि मकरकेतन[6] नचावौ ॥
निविड़[7] कानन भवन, बाहु रचित रयन[8],
सरस आलाप[9] सुख पुंज बरसावौ।
उभय संगम सिंधु सुरत पूषन बंधु[10],
द्रवत[11] मकरंद [12]रिवश अलि पावौ॥८१

नागरता[13] की रासि[14] किसोरी।
नव नागरकुलमौलि[15] सांवरो,
बरबस[16] कियो चित मुख मोरी[17]।

१–कमर में, २–मेंहदी, ३–देती है ४–नृत्य की एक विशेष चाल, ५–काम शास्त्र ६–कामदेव को, ७–सघन ८–श्रीराधा की भुजा के द्वारा सुशोभित शिविर ९–रसपूर्ण बात चीत, १०–कमल, ११–भरता है, १२–भ्रमर, १३–चतुरता १४–समूह, १५–मस्तक, श्रेष्ठ, १६–विवश, १७–मोड़कर, घुमाकर।

रूप रुचिर अंग-अंग माधुरी,
बिनु भूषन भूषित ब्रज गोरी।
छिन छिन कुसल सुघग अंग में,
कोक रभस रससिंधु झकोरी१ ॥
चंचल रसिक मधुप मोहन मन,
राखे कनक कमल कुच कोरी।
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग,
बाँधे विविध निबंधन डोरी ॥
अवनी उदर नाभि सरसी२ में,
मनों कछुक मादिक मधु घोरी।
जश्री हितहरिवंश पिवत सुन्दर वर
सींव सुदृढ़ निगमनि३ की तोरी ॥८२॥

छाँड़िदै मानिनी मान मन धरिबौ।
प्रनत४ सुन्दर सुघर प्रानवल्लभ नवल,
बचन आधीन सौं इता५ कत करिबौ ॥
जपत हरि बिबस तव नाम प्रति पद विमल
मनसि तव ध्यानत निमिस नहिं टरिबौ६

१—झकोरी हुई २—सरोवर, ३—वेदों ४—प्रेम ५—कम अर के लिए
६—टरना।

घटत पल-पल सुभग सरद की जामिनी,
भामिनी सरस अनुराग दिसि ढरिबौ[१] ।।
हौं जु कछु कहत निजु बात सुनि मान सखि,
सुमुखि बिनु काज घन बिरह दुख भरिबौ[२] ।
मिलत हरिवंश हित कुंज किसलय सयन,
करत कल केलि सुखसिंधु में तरिबौ ।।८३।।

आजु व देखियत है हो प्यारी रंग भरी ।
मोप न दुरत चोरी वृषभानु की किसोरी,
शिथिल कटि की डोरी नव के लालन सौं सुरत लरी[३] ।।
मुतियन लर टूटी चिकुर-चंद्रिका[४] छूटी,
रहसि रसिक लूटी गडनि[५] पीक परी ।
ननन आलस बस अधर बिंब निरस पुलक,
प्रेम परस[६] जयौ हितहरिवंश री राजत खरी[७] ।।८४।।

इति श्रीगोस्वामी श्रीहितहरिवंश महाप्रभु विरचित
श्रीहित चतुरासी समाप्ता ।

१—ढुरना चाहिये २—अनुभव करना। ३—प्रेम युद्ध किया, ४—केश की बनी चन्द्रिका, ५—कपोल, ६—प्रेम के स्पर्श से, ७—शोभायमान ।

❀ अथ फल स्तुति ❀

(छप्पय)

भवजल निधि कौं नाव काम पावक कौं पानी । प्रेम भक्ति को मूल मोद मंगल सुख खानी ॥ निगम सार सिद्धान्त सन्त विश्राम मधुर वर । रसिकन कौ रस सार सकल अक्षर रस कौ घर ॥ चौरासी श्रीहितहरिवंश कृत पद सुनें निशि भोर । छुटि चौरासी भ्रमनि तें निरख जुगल किशोर ॥१॥ निरखे जुगल किशोर भोर अरु रति न जान । पिय रूप रस मत्त भयौ कछु मनहि न आन ॥ प्रेम लक्षना भक्ति होय हिय आनन्द कारी । अरु वृन्दावन वास सखी सुख के अधिकारी ॥ कुंज महल की टहल सुख दम्पति सम्पति पाइ है । जन श्री रूपलाल हित प्रीति सौं जो चौरासी गाई है ॥२

(कवित्त)

छ पद विभास मांझ सात हैं बिलावल में टोड़ी में चतुर आसावरी में द्व बने । सप्त हैं धनाश्री में जुगल बसंत केलि देवगधार पच दोय रस सों सने ॥ सारंग में षोडश हैं चार ही मलार एक गौड़ में सुहायौ नव गौरी रस में भने ॥ षट कल्यान निधि कान्हरे केदारे येव वानी हितजू की सब चौदह राग में गने ॥१॥

॥ इति श्रीफलस्तुति समाप्ता ॥

* श्री स्फुट वाणी *

* श्रीहित स्फुट वाणी *

॥ सवैया ॥

द्वादश[1] चन्द्र, कृतस्थल[2] मंगल, बुध बिरुद्ध, सुर-गुरु[3] बंक।
पदि दशम्म-भवन[4] भृगु-सुत[5], मंद[6] सुकेतु जनम के अंक[7]॥
अष्टम राहु, चतुर्थ निशामणि[8], तौ हरिवंश काज न शंक।
जो पै कृष्ण-चरण मन अर्पित तौ करिहैं कहा नवग्रह रंक॥१॥

॥ सवैया ॥

भानु[9] त्रयम्म, अनम्म[10] निशापति,[11] मंगल-बुध शिवस्थल नीके[12]।
जो गुरु होय धरम्म-भवन के तौ भृगु-नंद सुमंद नषीके[13]॥
तीसरो केतु सुसेन सिंधु ग्रम[14] तौ हरिवंश मन-क्रम पीके[15]।
गोविन्द छाँड़ि भ्रमत ज्यों स्थि तौ करिहैं कहा नवग्रह नीके[16]॥२॥

॥ छप्पय ॥

नाशानौं छिन-भव फनन[17] बुधि[18] घटहि[19] प्रकाशित।
हुटि जु प्रसेत भेउ हु भये भिम-भासित[20]॥

१–बारहवाँ २–चौथे स्थान में ३–बृहस्पति ४–दशम स्थान में ५–शुक्र ६–शनि ७–जन्म स्थान में ८–सूर्य ९–सूर्य १०–प्रथम स्थान में ११–चन्द्र १२–ग्यारहवाँ स्थान १३–नवम स्थान १४–राहु १५–स्थिर होय १६–सामर्थ १७–मौन १८–बुद्धि १९–भ्रम में २०–मोह-ग्रसित।

पारावार सुर इन्द्र कलप[1] कामिनि मन फँधा[2] ।
परि य देह दुख-द्वन्द कौन क्रम-फाल[3] निकया[4] ॥
यहि बरहि बरपि हरिवंश हित जिनव[5] भ्रमहि गुण-सलिल[6] पर ।
जिहिं नामनि भगल्ल लोक तिहुँ सु हरि-पद भज्ञ न विलम्ब कर ॥३॥

॥ सवैया ॥

तू पावक नहिं, मरघौ सयानप[7] काहे कृष्ण भजत नहिं नीके ।
भविव सुमिट तजिव सुरमिन रथ[8] मन मंचत तंदुल जल[9] फीके ॥
जयश्रीहितहरिवंश नर्कगति दुरमर[10] यम द्वारे कटियत नक छींक[11] ।
भव-ब्रह्म[12] कठिन, मुनीजन दुर्लभ, पावत क्यों जु मनुज-तन भीके[13] ॥

॥ कुण्डलिया ॥

चकई प्राण जु घट रहैं पिय बिछुरंत निकज्ज[14] ।
सर-अन्तर[15] अरु काल-निशि तरफ तेज[16] घन गज्ज[17] ॥
तरफ तेज घन गज्ज लज्ज तुहि वदन न आवे ।
जल-विहून[18] करि नैन भोर किहिं भाय[19] बतावे ॥
जै श्री हित हरिवंश विचारि वाद अस कौन जु चकई ।
सारस यह संदेह प्राण घट रहैं जु चकई ॥४॥

१–समान २–फँसा लिया ३–काल की गति ४–छोड़ना किया ५–नहीं ६–विद्रुम मणी, जल, ७–चतुराई ८–भाग्य का रूप ९–चाँवल का पानी। १०–कठिन ११–छींकने पर नाक काटी जाती है, १२–शिव और ब्रह्मा १३–भीख माँगने पर, १४–निरर्थक १५–सरोवर का अंतर १६–बिजली १७–गर्जना १८–आँसू के बिना १९–भाव,

॥ कुण्डलिया ॥

सारस सुर-बिछुरंत कों जो पल सहय शरीर ।
अगिन अनग[1] जु तिय[2] भखै[3] तौ जानै पर-पीर ॥
तौ जानै पर-पीर धीर धरि सकहिं वज्र-तन[4] ।
मरत सारसहिं फूटि[5] पुनि न परचौ[6] जु लहत मन ॥
कै श्री हित हरिवंश विचारि प्रेम विरहा विन या रस[7] ।
निकट कंत नित रहत मरम कह जानै सारस ॥६॥

॥ छप्पय ॥

हैं भाजन[8] कृत जटित[9] विमल चन्दन कृत इन्धन[10] ।
अमृत पूरि तिहिं मध्य करत सरषप-खल[11] रिंधन[12] ॥
अदृभुत घर[13] पर करत कष्ट कंचन-हल वाहत[14] ।
बार[15] करत पाँवार[16] मन्द मोषन विष चाहत ॥
कै श्री हित हरिवंश विचारि कै मनुज-देह गुरु-चरण गहि ।
सकहिं तौ राख परपंच तजि कृष्ण-कृष्ण-गोविन्द कहि ॥७॥

१—काम की अग्नि २—सारस की पत्नी ३—खाय, अनुभव करे, ४—वज्र जैसा कठोर शरीर, ५—बिछुड़ना ६—अनुभव ७—विरह के बिना रस की स्थिति ८—पात्र ९—जड़ाऊ, १०—ईंधन ११—सरसों की खली १२—रांधना १३—पृथ्वी १४—चलाता है १५—बाड़ १६—प्रवाल मूँगा ।

॥ सवैया ॥

तातैं भैया मेरी सौं कृष्ण-गुण संचु[1] ।
कुत्सित वाद[2] विकारहि परधन सुनु सिख मन्द परतिय वंचु[3]।
मणिगण-पुञ्ज व्रजपति छाँड़त हित हरिवंश कर गहि कंचु[4] ॥
पाये जान जगत में सब जन कपटी कुटिल कलियुग-टंचु[5] ।
इहि-परलोक सकल सुख पावत मेरी सौं कृष्ण-गुण संचु ॥८॥

॥ अरिल्ल ॥

मानुष को तन पाय भजौ व्रजनाथ कौं ।
दर्वी[6] लैके मूढ़ [7]जरावत हाथ कौं ॥
जय श्रीहित हरिवंश प्रपंच विषय-रस मोहके।
हरि हाँ, बिन कंचन क्यौं चलैं पचीसा[8] लोह के ॥९॥

॥ राग बिलावल ॥

तू रति रंगभरी देखियत है री राधे, रहसि[9] रमी मोहन सौं व रैन।
गति अति शिथिल, प्रगट पलटे पट, गौर अंग पर राजत मैन[10] ॥
अलज[11] कपोल ललितलटकतिलट, भृकुटि कुटिलज्यौंधनुषरमैन[12]।
सुन्दरिरहत[13], कँहय[14] कंचुकि,कत[15] कनककलशकुच बिपनसदैन[16] ॥

१—संचय कर। २—विवाद ३—छोड़ दे ४—कांच ५—प्रकाशित ६—कलछी ७—जिसका ८—पासान में ९—भली प्रकार, १०—कामदेव ११—निर्लज्ज १२—रहती १३—कहाँ है १४—कहाँ १५—नख चिन्ह।

अधर बिंब दलमलित, आरसयुत[1] अरु आनद घूमत सखि नैन ।
जै श्री हितहरिवंश दुरत[2] नहिं नागरि, नागर मधुप मथित सुखसैन ॥१०॥

॥ राग विभास ॥

आनँद आजु नंद के द्वार ।
दास अनन्य[3] भजन-रस कारण प्रगटे लाल मनोहर ग्वार ॥
चंदन सकल धेनु तन मंडित कुसुम दाम[4] शोभित आगार[5] ।
पूरन कुम्भ बने तोरन[6] पर बीच रुचिर पीपर की डार ॥
युवति यूथ मिलि गोप विराजत बाजत पणव मृदंग सुतार ।
जै श्री हितहरिवंश अजिरवर[7] बीथिनु दधि-मधु-दूध-हरद के मार[8] ॥११॥

॥ राग धनाश्री ॥

मोहन लाल के रंग राँची[9] ।
मेरे ख्याल परौ जिन कोऊ बात दशों-दिशि माँची[10] ॥
कंत अनंत करौ जो कोऊ बात कहौं सुनि साँची ।
यह जिय जाहु भलैं सिर ऊपर, हौं व प्रगट ह्वै नाँची ॥
जाग्रत-शयन रहत उर ऊपर मणि कंचन ज्यों पाँची[11] ।
जय श्री हितहरिवंश डरों काके डर हौं नाहिन मति काँची ॥१२॥

१—आलस युक्त २—छिपना ३—अनन्य दास ४—फूलों की माला ५—घर, ६—द्वार ७—आँगन ८—गली ९—रची हुई १०—मच गई ११—जड़ी हुई ।

॥ पद ॥

चलौ वृषभानु गोप के द्वार ।
जन्म लियौ मोहन हित श्यामा,
आनंद – निधि सुकुमार ॥
गावत जुवति मुदित मिलि मंगल,
उच्च मधुर धुनि – धार ।
विविध कुसुम किसलय कोमल दल,
शोभित वंदन वार ॥
विदित[1] वेद विधि[2] विहित[3] विप्रवर,
करि स्वस्तिनु[4] उच्चार ।
मृदुल मृदंग मुरज भेरी डफ,
दिवि[5] दुंदुभि रवकार[6] ॥
मागध सूत बंदी चारण जन,
करत पुकारि – पुकारि ।
हाटक[7] हीर चीर पाटम्बर,[8]
देत सम्हारि – सम्हारि ॥
चदन सकल धेनु-तन मंडित
चले जु ग्वाल सिंगारि ।
जय श्री हितहरिवंश दुग्ध-दधि छिरकत,
मध्य हरिद्रा गारि[9] ॥१६॥

१–प्रसिद्ध २–वैदिक क्रिया, ३–संपन्न की ४–आशीर्वादात्मक मन्त्र
५–आकाश में ६–शब्द ७–सुवर्ण ८–रेशमी वस्त्र, ९–हल्दी डालकर

राग गौरी

तेरौई स्याम राधिका प्यारी गोवर्द्धन पर लालहिं ।
कनक लता सी क्यों न विराजत अरुझी स्याम तमालहिं ॥
गौरी गान सु तान ताल गहि रिझवत क्यों न गुपालहिं ।
यह जोवन कंचन तन ग्वालिन सफल होत इह कालहिं ॥
मेरे कहें विलंब न करि सखि,भूरि भाग अति भालहिं ।
जयश्रीहितहरिवंश उचितहौं चाहत स्याम कंठकी मालहिं
॥१७॥

पद

आरती मदन गोपाल की कीजियें ।
देव,ऋषि,व्यास,शुकदास सब कहत निज,
क्यों न बिन कष्ट रस-सिन्धु कों पीजिये ॥
अगर करि धूप कुमकुम मलय रंजित-
नव वर्तिका घृत सों पूरि राखो ।
कुसुम कृत माल मंदलाल के भाल पर,
तिलक करि प्रगट यश क्यों न भाखो ॥
भोग प्रभु योग करि थार धरि कृष्ण पै,
मुदित भुज दण्डपर चमर ढारो ॥

१७—भूरि भाग=महा भाग्य ।

आचमन पान हित मिलत कपूर जल ।
सुभग मुख वास,कुल ताप जारी ।।
शंख दुंदुभि पणव घंट कल वेणु रव।
झल्लरी सहित स्वर सप्त नाँचौ ।
मनुज तन पाय यह दाय व्रजराज भज ।
सुघर हरिवंश प्रभु क्यों न याँचौ ।।१८।।

पद

आरती कीजै श्याम सुन्दर की ।
नंद के नन्दन राधिका वर की ।
भक्ति करि दीप प्रेम करि बाती ।
साधु सङ्गति करि अनुदिन राती ।।
आरती व्रज जुवति यूथ मन भावै ।
श्यामलीला श्री हरिवंश हित गावै ।१६।

१८—पान हित=पीने के लिए, जोग=योग्य; कुल ताप=अपने सम्पूर्ण वंश का ताप, दाय=अवसर ; याँचौ=याचना करो ।
१६—अनुदिन राती=प्रतिदिन प्रकाशित ।

राग गौरी

रहौ कोऊ काहू मनहिं दिये ।
मेरे प्राण नाथ श्री श्यामा शपथ करौं तृण छिये ।।
जे अवतार कदम्ब भजत हैं,धरि दृढ़ व्रत जु हिये ।
तेऊ उमगि तजत मर्य्यादा, वन विहार रस पिय ।।
खोये रतन फिरत जे घर-घर कौन काम ऐसे जिये ।
ज श्रीहितहरिवंश अनत सचु नाहीं बिन या रजहिं लिये
।२०।

राग कल्याण

हरि रसना राधा राधा रट ।
अति अधीन आतुर यदपि पिय कहियत है नागर नट ।।
संभ्रम भ्रम, परिरंभन चुम्बन, ढूँढ़त कालिंदी तट ।
विलपत,हँसत विषीदत, स्वेदित सतु सींचत अँसुवन
पशीवट

२०—तृण छिये=दृढ़ता के साथ ; कदम्ब=समूह , अनत=अन्य स्थान में , सचु=सुख , रजहिं लिये=श्री वृन्दावन की रज ।

२१—भ्रम=भूल ; संभ्रम=घबराहट के साथ , परिरंभन=आलिंगन ; विषीदत=दुखित होना ; स्वेदत=पसीना आना , सतु=और प ।

अंगराग,परिधान बसन,लागत ताते प्रभु पीत पट ।
श्रीहितहरिवंश प्रशंसित श्यामा द प्यारी कंचन घट
॥२१॥

राग कल्याण

लाल की रूप माधुरी नयननि निरखि नेकु सखी ।
मनसिज मन हरन हास,सांवरो सुकुमार रासि,
नख सिख अंग अंगनि उमंगि,सौभग सींव नखी ॥
रँग भगी सिर सुरँग पाग लटकि रही बाम भाग
चंप कली कुटिल अलक बीच-बीच रखी ।
आयत दृग अरुण लोल कुंडल मंडित कपोल,
अधर दसन दीपति की छबि,क्यों हू न जात लखी ।
अभयद भुज दंड मूल पीन अंस सानुकूल
कनक निकष लसि दुकूल, दामिनी परखी ।

२१—परिधान बसन—पहिनने के कपड़े ; ताते—गरम ।
२२—मनसिज—कामदेव, हास—हँसी,सौभग सींव—सुन्दरता की सीमा;नखी—पार करती है,सुरंग—लाल;आयतदृग—बड़े बड़े नेत्र ;लोल—चंचल ;मंडित—सुशोभित दीपति—प्रकाश ; अभयद—अभय देने वाले , पीन—पुष्ट , अंस—कन्धे, निकष—कसौटी; परखी—दब गई,

उर पर मन्दार हार मुक्ता लर वर सुढार,
मत्त कुरद गति, तियन की देह दसा करषी ।।
मुकुलित वय नव किशोर,वचन रचन चित के चोर,
मधु रितु पिक साव चूत मंजरी चखी ।
जै श्री नटवत हरिवंश गान, रागिनी कल्याण तान,
सप्त स्वरन कल,इते पर मुरलिका बरषी ।।२२।।

राग मलार

दोउ जन भींजत अटके बातन ।
सघन कुंज के द्वारे ठाढ़े अम्बर लपट गातन ।।
ललिता ललित रूप रस भींजी बूंद बचावत पातन ।
जय श्रीहितहरिवंश परस्पर प्रीतम मिलवत रतिरस
घातन।२३।

---

१ —मन्दार=स्वर्गीय वृक्ष के फूल, करषी=आकर्षित करली मुकुलित वय=खिली हुई अवस्था, पिक साव=कोयल का बच्चा, चूत मंजरी=आम की मंजरी, नटवत=भाव दिखाता, कल=मधुर; बरषी=स्वरों की वर्षा की।
२—अम्बर=वस्त्र, पातन=पत्तों के द्वारा।

दोहा

सबसों हित, निष्काम मति, वृन्दावन विश्राम ।
श्री राधावल्लभ लाल कौ,हृदय ध्यान मुख नाम ॥१॥
तनहिं राखि सतसंग में, मनहिं प्रेम रस भेव ।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्प तरु सेव ॥२॥
निकसि कुंज ठाड़े भये, भुजा परस्पर अंस ।
श्री राधावल्लभ मुख कमल,निरखि नैन हरिवंश ॥३॥
रसना कटौ जु अनरटौं, निरखि अनफुटौ नैन ।
श्रवण फुटौ जो अनसुनौं, बिन राधा यश बैन ॥४॥



१—निष्काम मति—कामना रहित बुद्धि, विश्राम—परम सुख।
२—भेव—भिगोये रखो , सेव—सेवन करो ।
४—अन—बिना ।

• पोथी •

श्री सेवक-वाणी

❀ श्रीहितहरिवंशचन्द्रो जयति ❀

❋ श्री सेवक-चरित्र ❋

सेवक सम सेवक नहीं धर्मनि धीर प्रधान ।

श्री हरिवंश के नाम पुष्ट, बानी सर्वस जान ॥

श्री सेवक वाणी के कर्त्ता रसिक शिरोमणि श्री सेवक जी का जन्म गौंडवाने के गढ़ा* नामक ग्राममें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनका नाम दामोदरदासजी था, और ये उसी गांव में रहने वाले अपने परम मित्र श्री चतुर्भुज दासजी के साथ मिलकर भगवच्चर्चा एवं संत-सेवा में अपने समय को व्यतीत करते थे। इनकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र और सारासार विवेकिनी थी एवं बाल्यकाल से ही ये भगवत्तत्त्व के अनुसंधान में बड़ी लगन और श्रद्धा से प्रवृत्त रहते थे। सद्ग्रंथों के मनन एवं समय-समय पर उनके ग्राम में आने वाले संतों के समागम के द्वारा वे अपनी तत्त्व जिज्ञासा को पूर्ण करने की चेष्टा करते रहते थे। सतत सत्संग के द्वारा उनको यह निश्चय हो गया था कि सद्गुरु की शरण ग्रहण किये बिना भगवत्तत्त्व का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। किन्तु किसको गुरु बनाया जाय, इस बात का निर्णय वे नहीं कर पाते थे।

एक बार विचरण करते हुए श्रीवृन्दावन के कुछ रसिक उपासक उनके ग्राम में पहुंचे। दोनों जिज्ञासु मित्रों ने उन

---

* यह ग्राम जबलपुर से दो मील है।

लोगों को सम्मान पूर्वक आश्रय दिया, और 'रसिकों' ने प्रभु-सेवा के कार्यों से निवृत्त होकर रात्रि के समय प्रीति पूर्वक प्रभु का यश-गान किया जिसमें श्री श्यामा-श्याम की केलि की प्रधानता थी। दोनों यशस्वी मित्रों को यह यश-गान सुन कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ और इन बातों की दृढ़ प्रीति देख कर रसिक-उपासकों ने इनके गुरु के सम्बन्ध में पूछ ताछ की। दोनों ने अपनी गुरु-हीनता पर खेद प्रकाशित करते हुए रसिकों से कहा कि आप लोग जिसको बतावेंगे हम उन्हीं को गुरु बना लेंगे। रसिकों ने बताया कि इस समय श्रीवृन्दावन में गोस्वामी श्री हितहरिवंश ही सब रसिक-उपासकों के द्वारा प्रशंसित हो रहे हैं और फिर उन्होंने श्री हित महाप्रभु के लोकोत्तर रहन-सहन एवं अनन्य रसिकता का वर्णन उनको सुनाया। सब बातें सुनकर इन दोनों ने दृढ़ता पूर्वक निश्चय कर लिया कि हम लोग श्री हितप्रभु को ही अपना गुरु बनावेंगे।

रसिक-उपासकों ने फिर उनको श्री हरिराम व्यास जी के शिष्य होने की बात सुनाई। इससे दोनों मित्रों के मन में श्रीहित महाप्रभु की करुणा के प्रति पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो गया। किन्तु गृहस्थ के फन्दे से वे लोग जल्दी में निकल सके और इधर श्रीहितप्रभु अन्तर्धान हो गये। यह समाचार जब गढ़ा पहुंचा तब इन दोनों को परम विरह का अनुभव हुआ और वे अत्यन्त व्याकुल रहने लगे। इसके बाद उन्होंने सुना कि श्री वनचन्द्र गोस्वामी इस समय श्री हित गादी पर विराज कर लोगों को आनन्द दे रहे हैं। चतुर्भुज दासजी ने सेवक जी से कहा कि श्रीवृन्दावन चलकर श्रीवनचन्द्र जी को ही गुरु बना लें और जीवन सफल करें। सेवकजी ने कहा 'मैं तो स्वयं श्रीहितजी से ही दीक्षा लूंगा अन्यथा शरीर परित्याग कर दूंगा।' यह सुनकर चतुर्भुज दासजी श्रीवृन्दावन को चल दिये और श्रीवनचन्द्रजी की शरण हो गये।

इधर सेवकजी ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर श्री हरिवंश नाम की रट लगाई और श्री हितमहाप्रभु ने कृपा करके स्वप्न में श्रीराधिकाजी से प्राप्त मंत्र उनको प्रदान किया एवं श्री वृन्दावन और उसके समस्त वैभव को उन्हें प्रत्यक्ष करा दिया। श्री सेवक जी धन्य हो गये और उनकी वाणी जाग्रत होकर श्री राधावल्लभ लाल की नित्य-नूतन छवि का वर्णन करने लगी। चतुर्भुजदासजी जब मंत्र लेकर श्रीवृन्दावन से लौटे तो उन्होंने अपने परम मित्र को उसी मंत्र का जाप करते पाया जो उन्होंने श्री वनचन्द्र प्रभु से प्राप्त किया था। इसके बाद उन्होंने श्री सेवक-वाणी सुनी और गद्‌गद् होकर सेवकजी के चरण पकड़ लिये। इस वाणी में चतुर्भुजदासजी ने श्री हित महाप्रभु के रस मुक्ताओं को प्रेम की डोरी में गुंथा हुआ देखा और उनको यह निश्चय होगया कि रसिक-उपासना के रहस्य को समझने के लिये इस वाणी के बिना काम नहीं चल सकता और जो इस वाणी को नहीं जानेगा रसिक उपासक उसकी बात नहीं मानेंगे।

सेवक वाणी जे नहिं जान। तिनकी बात रसिक नहिं मान॥

वृन्दावन में श्री वनचन्द्र प्रभु ने जब सेवक वाणी सुनी तब सेवकजी को देखने की उनकी बड़ी प्रबल इच्छा हुई और उन्होंने प्रण किया कि मैं जब सेवकजी को देख पाऊंगा तो अपने प्रभु का भण्डार लुटाऊंगा। यह निश्चय कर उन्होंने सेवक जी को पत्र लिखा और उनको शपथ दिलाकर शीघ्र आने को आदेश दिया। सेवकजी को जब पत्र मिला और उन्होंने श्रीवनचन्द्रजी का प्रण सुना तो उनका प्रेमी हृदय कांप उठा। उनके पहुँचने पर प्रभु की सामग्री लुटाई जायगी इस समाचार को सुन कर वे विह्वल हो गये। वे बार बार मन कर

श्रीजी के दर्शन के लिये गये किन्तु श्री वनचन्द्र प्रभु ने उनको "नेह भरी चितवनि" से पहचान लिया और आनन्द मग्न होकर उनसे मिले। सेवक जी ने उनके चरणों में सिर रखकर प्रार्थना की कि मेरे कारण प्रभु की सामग्री लुटने न पावे किन्तु श्री वनचन्द्र प्रभु प्रण कर चुके थे और अन्त में यह निर्णय किया गया कि केवल प्रसादी भण्डार लुटाया जाय। श्री गुरु-चरणों का धर्मी के ऊपर इस प्रकार रीझना अद्भुत था। श्री वनचन्द्र प्रभु ने उसी समय यह आज्ञा दी कि भविष्य में श्री चतुरासीजी एवं सेवक वाणी साथ लिखी जाँय और साथ ही इनका पाठ किया जाय। ●

चौरासी अरु सेवक बानी। इक संग लिखत पढ़त सुखदानी॥

श्रीध्रुवदासजी अपनी 'भक्त नामावली' में श्री सेवक जी के सम्बन्ध में कहते हैं वे भजन-सरोवर के हंस हैं। श्री सेवक की बराबरी कौन कर सकता है जिन्होंने मन और वाणी के द्वारा एक व्रत धारण करके एकमात्र श्री हरिवंश को ही गाया है। श्री सेवकजी की ऐसी दृढ़ टेक थी कि उन्होंने 'वंश' के बिना 'हरि' नाम भी नहीं लिया। वास्तव में वस्तु उसी को प्राप्त होती है जो एक व्रत रखता है।

सेवक की सम को करै भजन-सरोवर-हंस।
मन-बच कै धरि एक व्रत गायो श्री हरिवंश॥

वंश बिना हरि-नाम हू लियौ न जाकी टेक।
पावै सोई वस्तु को जाके है व्रत एक॥

● श्रीमत्प्रद् मुचितजी कृत सेवकजी के चरित्र का गद्य-रूपान्तर।

श्रीवनचन्द्र प्रभु के शिष्य एवं सेवक जी के समसामयिक धरसाम वाम श्री नागरीदास जी ने सेवक जी की वन्दना करते हुए गाया है।

प्रथम श्री सेवक पद सिर नाऊं।
कृपा करो दामोदर मो प श्री हरिवंश चरण रति पाऊँ॥
गुण गंभीर व्यास नन्दन के तुव परसाद कछुक यश गाऊँ।
नागरिदास के तुम ही सहायक रसिक अनन्य-नृपति मन भाऊँ॥

गोस्वामी श्री हित कृष्णमणिजी ने ठीक ही कहा है कि—
राधावर नाम-सो न वृन्दावन धाम-सो
न सेवक-सो सेवक न गुसाई हरिवंश-सो।

❀ श्री सेवक वाणी के कुछ उपदेश ❀

१—श्री हरि और हरिवंश में कोई भेद नहीं है जिस प्रकार प्रभु और ईश्वर एक ही वस्तु के दो नाम हैं उसी प्रकार हरि और हरिवंश भी एक हैं। इनको दो मानने से अनन्यता नहीं रहती।

२—श्री हित प्रभु ने सब भक्तों की एक ही रीति बतलाई है—पोषा-श्रवण गुण-कथन एवं नाम-स्मरण में दृढ़ विश्वास रखना। इस रीति को ग्रहण किये बिना भक्ति उत्पन्न नहीं होती।

३—श्री हित प्रभु ने संसार के लोगों को समझाया कि जो रस रीति सब से दूर एवं दुर्गम है वही सब विश्व में भरपूर है और वही सजीवनता का मूल है।

४—श्री हित प्रभु की कृपा से जब मनुष्य का मन इस रस रीति से मग्न होता है तब उसकी भव त्रास से रक्षा हो जाती है और उसको निर्भयता प्राप्त हो जाती है।

५—श्री हरिवंश नाम का जप करते-करते जब उस नाम का प्रभाव मनुष्य के हृदय में प्रकट होता है, तब वह तृण से भी अपने को नीचा समझने लगता है। वह कभी अपने समय को व्यर्थ नहीं खोता। संसार की शुभ किंवा अशुभ बातों का उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह श्री हरिवंश के रस-धर्म को धारण करने वाले रसिक जनों को सब से अधिक प्रिय वस्तु मानने लगता है।

६—श्री हरिवंश का नाम ही धर्म का प्रकट रूप है। श्री हरिवंश के नाम में सम्पूर्ण सिद्धियाँ हैं और रसिक जन अपने भरण पोषण की चिन्ता छोड़ कर इनका उपभोग करते रहते हैं। श्री वृन्दावन का सम्पूर्ण विलास श्री हरिवंश नाम का ही वैभव है।

७—श्री हरिवंश की उपासना की रीति यह है कि उसमें श्री श्यामा-श्याम का गान एक साथ किया जाता है। यह दोनों एक प्राण दो देह हैं और इनमें कभी एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता। इन दोनों में श्री श्यामसुन्दर आराधक हैं और श्री राधारानी आराध्य हैं। यह दोनों ललितादि सहचरी गण के साथ रह कर सुख का उपभोग करते रहते हैं और श्रीहरिवंश इनकी परस्पर प्रीति का गान करते रहते हैं।

८—श्री हरिवंश ने गान किया वाणी में श्री वृन्दावन की सुन्दरता, श्रीश्यामा-श्याम का केलि-विलास, शरद एवं वसन्त

ऋतु की रासलीला एवं श्री श्यामा श्याम की सुरतान्त छवि का वर्णन है।

९—श्रीहरिवंश के नाम एवं वाणी के निकट श्री श्यामा श्याम सदैव प्रगट रहते हैं। श्री हरिवंश के नाम और वाणी अत्यन्त माधुर्य-पूर्ण और प्रेम रस का दान करने वाले हैं और श्यामा-श्याम सर्वथा इनके वश हैं।

१०—श्री हरिवंश की वाणी का प्रभाव तब प्रगट होता है जब मनुष्य सांसारिक पदार्थों से आशा करना छोड़ देता है सर्वथा निःस्वार्थ होकर जन्म-मरण स्वर्ग सुख-दुख और अपने कल्पित सम्बन्धों को तोड़ देता है और श्री हरिवंश के नाम में अन्तर पड़ने को एक मात्र हानि एवं श्री हरिवंश की वाणी के रसास्वाद को एक मात्र लाभ समझने लगता है।

११—श्री हरिवंश के अनन्त मधुर गुण हैं। श्री हरिवंश ही उपासक हैं और वही उपास्य हैं। वही कारण है और वही कार्य हैं। चार अक्षरों वाले श्री हरिवंश नाम के जाप से सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और भवसागर से उद्धार हो जाता है।

१२—जिन लोगों के लिये परम प्रेम-स्वरूप श्री श्यामा श्याम का प्रेम ही एक मात्र सुख और सम्पत्ति है वे सब श्री हरिवंश नाम की उपासना करते हैं क्योंकि श्री हरिवंश नाम के जप से श्री राधिका श्याम सदैव प्रसन्न रहते हैं।

१३—श्री हरिवंश की रस रीति में श्री वृन्दावन, श्री सहचरी गण, श्री श्यामसुन्दर, एवं श्री वृषभानु नन्दिनी परस्पर-

तत्सुखमयी प्रीति में आबद्ध होकर लोक एवं वेदकी मर्यादाओं से अतीत परम प्रेममयी क्रीड़ा में प्रवृत्त हैं।

१४—श्री हरि को प्रेम-स्वरूपता प्रदान करने वाली उनकी बंसी है। इसी से ही सम्पूर्ण रास-विलास का उद्गम है, अतएव मैं (सेवक जी) त्रिलोक में शिरोमणि श्रीहरि' नाम को भी 'वंश' के बिना लेने को तैयार नहीं हूं। मैं सदैव श्री हरिवंश को ही ग्रहण करूंगा।

१५—अनन्य प्रेमियों के भजन में अन्तर्यामी स्वरूप की उपासना को अवकाश नहीं है क्योंकि प्रगट रूप ही प्रीति का आश्रय बन सकता है। प्रगट रूपों में सब से मुख्य रूप वह है जो श्री वृन्दावन में नित्य रास क्रीड़ा में निमग्न है।

१६—श्री हरिवंश नाम की मुख्य उपासना तब बनती है जब श्री हरिवंश का नाम सुनाने वालों पर उनकी उपासकों की सेवा करने वालों पर, उनकी वाणी का गान करने वालों पर एवं उनके धर्म की शिक्षा देने वालों पर सर्वस्व न्योछावर कर दिया जाता है।

१७—उपासक के हृदय में श्री हरिवंश की कृपा का उदय तब समझना चाहिये जब वह जीव मात्र के प्रति प्रीति रख कर अपनी रस रीति का निर्वाह करने लगे, जब लीला-श्रवण एवं गुण-कथन में उसका दृढ़ विश्वास हो जाय। शत्रु-मित्र मान-अपमान, दुःख-सुख और लाभ-हानि को वह बराबर समझने लगे और जब अपने सहधर्मियों के साथ मिलकर वह एक मात्र प्रीति-रस पाने में लग जाय।

१८—उपासक के ऊपर जब श्री हरिवंश की कृपा बरसती है तब श्री राधावल्लभ लाल के नित्य प्रेम-विहार का दर्शन करके उसका रोम-रोम पुलकित हो जाता है और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। प्रेमावेश में कभी वह रोता है, कभी गाता है और कभी अट्टहास करने लगता है। वह कभी श्री श्याम श्यामा के साथ विहार करता है, कभी प्रेम-पूर्वक उनके दर्शन करता है और कभी उनके यश का गान करता है। कुञ्ज के छिद्रों में से अद्भुत युगल स्वरूप का दर्शन करके उसके नेत्रों को तृप्ति नहीं होती।

१९—श्री हरिवंश के प्रसिद्ध धर्म को अल्प पुण्य वाला मनुष्य नहीं समझ सकता। इस धर्म के समझने के लिये धर्मियों का (इस धर्म का पालन करने वालों का) सेवन किया जाता है और इष्ट मन्त्र की तरह उन ही का जप किया जाता है, क्योंकि धर्मी के बिना धर्म की स्थिति नहीं है और धर्म के बिना धर्मी का अस्तित्व नहीं है। श्री हरिवंश की कृपा से इस मर्म को समझदार लोग ही समझते हैं और वे सब प्रपञ्च छोड़ कर धर्मियों से प्रीति करके उनकी शरण ग्रहण करते हैं।

२०—जहाँ श्री हरिवंश का नाम है, वहाँ सदैव उदारता निवास करती है, उस जगह सकामता का प्रवेश नहीं होता और कृपालुता छाई रहती है। जो श्री हरिवंश के नाम में लीन रहते हैं, उनका संसार में कोई शत्रु नहीं रहता और प्रपञ्च दम्भ धार्मिक उनसे सहा नहीं जाते। जो श्री हरिवंश का नाम लेते हैं वे अनन्त सुख का भोग करते हैं और प्रेम की अगम्य दुरूह दशायें उनमें प्रत्यक्ष रूप से देखी जाती हैं।

२१—प्रमाणों के उनागर सब सार-स्वरूप श्री हरिवंश नाम को छोड़ कर अपने सिर पर विषयों का भय भार लाद

लेते हैं और राजसी वैभव को देखकर उसकी ओर खिंच जाते हैं। ऐसे लोगों को साधु-संग तो भार-स्वरूप दिखाई देता है, और मान-प्राप्ति के लिये राजसी-वृत्ति के लोगों का मुँह ताकते रहते हैं। ऐसे लोग अपने को सखी-भाव का तो उपासक बतलाते हैं और हर जगह का अन्न ग्रहण करके सारा दिन लड़ाई झगड़े में बिताते हैं और रात भर सोते हैं। अहो! यह लोग श्री व्यासनन्दन के प्रसिद्ध नाम को जान बूझ कर छोड़ देते हैं, और अपने जन्म को व्यर्थ में ही गवां देते हैं।

२२—जब उपासक का श्री हरिवंश नाम के साथ परिचय होता है तब उसमें फूलों जैसी सहज कोमलता आजाती है। उसको सब लोग परम उदार कहने लगते हैं वह अपने मन में कभी कोई सोच-विचार नहीं करता और सदैव अपने मन को श्री हरिवंश के चिन्तन में लगाये रखता है। वह सदैव सब को सुख देने वाले कोमल वचन बोलता है और कभी उसके मुख से दुखदाई वचन नहीं निकलते।

२३—महा शक्ति शाली श्री हरिवंश नाम हृदय में प्रगट होने पर मदन के मोह का मद एवं दम्भ का दम दलित हो जाता है। भ्रम भयभीत होकर भाग जाता है और गर्व का अभिमान खण्डित हो जाता है। लोभ क्रोध कपट पाखण्ड आदि नष्ट होजाते हैं। तृष्णा अपराध, मत्सर और अपमान निर्बल हो जाते हैं और शुभ अशुभ रूपी द्वन्द्व (द्विधा) का नाश होकर संसार में जय जयकार होने लगता है।



॥ श्री हिताचार्यो विजयते ॥

★ श्री सेवक-वाणी ★

॥ अथ श्रीहित जसविलास ॥

(त्रिपदी छन्द)

श्रीहरिवंश चन्द्र शुभ नाम ।
सब सुख सिन्धु प्रेम रस धाम ।
आठ-घरी[1], बिसरौं नहीं ॥
यह जु परयौ मुहि सहज सुभाव ।
श्रीहरिवंश नाम रस चाव ।
नाव[2] सुदृढ़ भव तरन कौं ॥
नाम रटत भाई सब सोहि[3] ।
देहु सुबुद्धि कृपा कर मोहि ।
पोइ सुगुन माला रचौं ॥
नित्य सुकण्ठ जु पहिरौं तास[4] ।
जस बरनौं हरिवंश बिलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥१॥

---

१ प्रतिदिन २ नौका ३ शोभा, ४ उसको

श्रीवृन्दावन वैभव जितौ[1] ।
बरनत बुद्धि प्रमानौं[2] कितौ ।
तितौ सबै हरिवंश कौ ॥

सखी सखा बरनौं कहौं निवेर[3] ।
सो मेरे मन कौ अवसेर[4] ।
टेरि सकल प्रभुता[5] कहौं ॥

हरि-हरिवंश भेद नहिं होइ ।
प्रभु-ईश्वर जानें सब कोइ ।
कोइ कहै न अनन्यता ॥

विश्वम्भर सब जग आभास[6] ।
जस बरनौं हरिवंश विलास[7] ।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥ २ ॥

जन्म कर्म गुण रूप अपार ।
ताकी कथा कहत विस्तार ।
बार बार सुमिरन करौं ॥

हौं लघुमति जु अन्त नहिं लहौं ।
बुद्धि प्रमान कछू कथि[8] कहौं ।
रहौं शरण हरिवंश की ॥

---

१ जितनी २ माप नहीं कर सकती, ३ अलग-अलग करके ४ रुकावट, ५. ऐश्वर्य, ६ प्रकाश ७. क्रीड़ा, ८.. छन्द रचना करके

सोच्यौ कहि मोहि केतिक[1] मतो[2] ।
अस बरनत हारैं सरस्वती ।
तितौ सबै[3] हरिवंश की ॥

देहु कृपा करि बुद्धि प्रकास ।
जस बरनौं हरिवंश विलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥ ३ ॥

कलियुग कठिन[4] वेद-विधि रही ।
धर्म कहूँ नहिं दीसत सही[5] ।
कहौ भलौ कोउ ना करै ॥

उदवस[6] विश्व भयौ सब देस ।
धर्म रहित मेदिनी-नरेस[7] ।
म्लेच्छ सकल पहुमी[8] बढ़े ॥

सब जन करहिं आधुनिक धर्म ।
वेद-विहित मानै नहिं कर्म ।
मम भक्ति को बर्यौं सहै ॥

बूड़त भव पावै न उसास[9] ।
जस बरनौं हरिवंश विलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥ ४ ॥

---

१ कितनी, २ बुद्धि ३ उतनी सब ४ हिंदू धर्म छोड़ सब, ५ शुद्ध ६ सारहीन ७ पृथ्वी के राजा लोग ८ पृथ्वी, ९ श्वासा,

धर्म रहित जानी सब दुनी[1]।
म्लेच्छनि भार दुखित मेदिनी[2]।
धनी[3] और सूझौ[4] नहीं ॥
करी कृपा मन कियौ विचार।
श्रुतिपथविमुख[5] दुखित संसार।
सार वेद विधि उद्धरी[6] ॥
सब अवतार भक्ति विस्तरी।
पुनि रस रीति जगत उद्धरी।
करयौ धर्म अपनौ प्रगट ॥
प्रगटे ज्ञान धर्म कौ भास।
जस बरनौं हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥ ५ ॥
मथुरा मंडल भूमि आपनी।
जहां बाद* प्रगटे जग धनी।
भनी[7] अवनि वर आप सुख ॥
शुभ वासर शुभ नखत[8] विचार।
माधव मास ग्यास[9] उजियार[10]।
नारिनु मंगल गाइयौ ॥

---

१ संसार २ पृथ्वी ३ मालिक, ४ दूसरा ५ वेद मार्ग से विमुख ६ वेदों की सार रूप भक्ति का उद्धार किया ७ कही ८ शुभ नक्षत्र, ९ एकादशी १० शुक्ल पक्ष की

* यह ग्राम वृन्दावन से १४ मील की दूरी पर श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय प्रवर्त्तक श्रीहितहरिवंश महाप्रभु का प्राकट्य-स्थल है।

सच्छिद्न[1] देव दुंदुभी बाजिये।
ज-ज सब्द सुरनि मिलि किये।
हिये सिराने[2] सबनि के ॥

तारा जननि[3] जनक[4] ऋषि व्यास।
जस बरनौं हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥ ६ ॥

श्रीभागवत् जु शुक उच्चरी[1]।
तसी विधि जु व्यास विस्तरी।
करी नव जसी हुती ॥

घर घर तोरन[5] बंदनवार।
घर घर प्रति चित्रहि दरबार[7]।
घर-घर पंच सब्द बाजिये ॥

घर घर दान प्रतिग्रह[8] होइ।
घर घर प्रति निरतत सब कोइ।
घर घर मंगल गावहीं ॥

घर घर प्रति प्रति होत हुलास।
जस बरनौं हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥७॥

---

१ उभर गए २ शान्त हुए, ३ माँ ४ पिता ५. बन्दनवार ६ द्वार ७ द्वार पर मंगल चित्र बनाए गए ८. दान लेना।

निर्मल सजल सरोवर भये ।
उलहे[1] वृक्षनि पल्लव नये ।
भए सकल सुख सबनि कौं ॥
असन[2] सन सुख नित नित नये ।
प्रज सुकाल चहूँ दिसि भये ।
गये अशुभ सब विश्व के ॥
म्लेच्छ सकल हरि जस विस्तरहिं ।
परम ललित बानी उच्चरहिं ।
करहिं प्रजा पालन सब ॥
अपनी अपनी रुचि-बस बास[3] ।
जस घरनौं हरिजस बिलास ।
श्रीहरिवंशहि गावहीं ॥ ८ ॥
चलहिं सकल जन अपने धर्म ।
ब्राह्मन सकल करहिं षट कर्म ।
भर्म[4] सबनि कौ भाजियौ ॥
छूटि गई कलियुग की रीति ।
नित नित नव-नव होति सप्रीति[5] ।
प्रीति परस्पर अति बढ़ी ॥
प्रगट होत ऐसी विधि भई ।
सब भवजनित[6] आपदा[7] गई ।
नई-नई रुचि अति बढ़ी ॥

---

१ प्रफुल्लित हुए २ भोजन ३ रहन सहन, ४ भ्रम
५ प्रेम ६ संसार के द्वारा उत्पन्न की हुई ७ विपत्ति ।

सब जन करहिं धर्म-अभ्यास।
अस बरनौं हरिवंश-विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥ ९ ॥

बाल विनोद न बरनत बनहिं।
अपनी-सों[1] उपदेशत मनहिं।
गनहिं कवन[2] लीला जिती[3] ॥

सब हरि-सम[4] गुन रूप अपार।
महापुण्य प्रगटे संसार।
मार-विमोहन[5] तन धर्‍यो ॥

छिन न भूपित शुभ बरनन भास।
दुलरावत बोलत मृदु हास।
व्यासमिश्र को लाड़िलौ ॥

मुदित सकल नहिं छांड़त धाम।
अस बरनौं हरिवंश-विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥ १० ॥

अब उपदेश भक्ति को कह्यौ।
जैसी विधि जाके चित रह्यौ।
सह्यौ जु मनवांछित सफल।

---

१ अपनी समझ व मनमार, २ कौन ३ जितनी
४ समान ५ कामदेव को मोहित करने वाला

सब हरिभक्ति कही समुझाइ ।
जैसी-जैसी जाहि सुहाइ ।
जाइ सकल चरननि भजे[1] ॥
साधन सकल कहे अविरुद्ध[2] ।
वेद-पुरान सु आगम शुद्ध ।
बुधि-विवेक जे जानहीं ॥
समुझ्यो सबनि सु भक्ति-उजास[3] ।
जस बरनौं हरिवंश-विलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥११॥
अब अवतार-भेद तिन कहे ।
सकल उपासक जिन मन रहे ।
कहे भक्ति-साधन सबै ॥
मथुरा नित्य कृष्ण को वास ।
निशि दिन स्याम न छाँड़त पास ।
तासु[4] सकल लीला कही ॥
कही सबनि की एक रीति ।
श्रवन-कथन-सुमिरन परतीति[5] ।
बीति काल सब जाइयो ॥
उपज्यो सबनि सुदृढ़ विश्वास ।
जस बरनौं हरिवंश-विलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥१२॥

---

१ सेवन करन लगे २. विरोध हीन ३ प्रकाश
४ उनकी ५. विश्वास ।

अब जु कही सब ब्रज की रीति।
जैसी सबनि नंद-सुत प्रीति।
कीरति सकल जग विस्तरी ॥

बाल-चरित्र प्रेम की नींव[1]।
कहत-सुनत सब सुख की सींव[2]।
जीवन ब्रज-बासिनु सफल ॥

ब्रज की रीति सु अगम अपार।
विस्तरि कही सकल संसार।
कारन सबहिनु के भये ॥

ब्रज की प्रीति रीति अनियास[3]।
जस बरनौं हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥ १३ ॥

जेहि विधि सकल भक्ति अनुसार।
तैसी विधि सब कियौ विचार।
सारासार विवेकि कैं[4] ॥

अब निजु[5] धर्म आपनौं कहत।
तहाँ नित्य वृंदावन रहत।
बहत प्रेमसागर जहाँ ॥

---

१ आधार, २ सीमा, ३ सहज बिना चेष्टा किये, ४ विवेचन करके, ५ सहज।

साधन सकल भक्ति जा सनौं[1]।
निजु-वैभव[2] प्रगटत आपनौं।
भनौं[3] एक रसना कहा॥
श्रीराधा जुग चरन निवास[4]।
जस बरनौं हरिवंश-विलास।
श्रीहरिवंशहि गावहीं॥ १४॥
इति श्रीहित जस-विलास प्रकरण ॥१॥

❀ अथ श्रीहरिवंश रस-विलास प्रकरण ❀

(त्रिपदी छन्द)

श्रीहरिवंश नित्य वर केलि[5]।
आवृत सरस प्रेम रस वेलि।
मेलि[6] कंठ भुज लोल हीं॥
दमितनि-गन मन अधिक सिरात[7]।
निरखि निरखि लोचन न अघात[8]।
गात गौर साँवल बने॥
जूथ-जूथ जुवतिनु के घने[9]।
मध्य किशोर किशोरी बने।
गनैं कवन[10] रति[11] पति बढ़ी॥

---

१ जिसका २ सहज वैभव, ३ कहूँ, ४ स्थिति, ५ श्रेष्ठ प्रेम-क्रीड़ा ६ डाल कर, ७ शीतल होते हैं ८. तृप्त होते, ९ समूह १० कौन अनुमान लगाये, ११ प्रेम।

नित-नित लीला, नित-नित रास ।
सुनहु रसिक[1] हरिवश विलास ।
श्रीहरिवशहि गाइहों ॥ १ ॥

लता-भवन सुख शीतल छहाँ ।
श्रीहरिवश रहत नित जहाँ ।
तहाँ न वभव त्राम को[2] ॥

जब-जब होत धर्म की हानि ।
तब-तब तनु धरि प्रगटत आनि[3] ।
जानि और दूजी नहीं ॥

जो रस-रीति सबन तें दूरि ।
सो सब विश्व रही भरपूरि ।
मूरि[4] सजीवन[5] कहि दई ॥

सब जन मुदित करत मन हास ।
सुनहु रसिक हरिवश विलास ।
श्रीहरिवशहि गाइहों ॥ २ ॥

ललितादिक श्यामा अरु श्याम ।
श्रीहरिवश प्रेम रस धाम ।
नाम प्रगट जग जानिये ॥

---

१ रस के आस्वादक २ दूसरे की, ३ आकर ४ जड़ी
५ जीवन प्रदान करने वाली ।

श्रीहरिवंश-जनित[1] जहाँ प्रेम।
तहाँ कहाँ व्रत संयम नेम।
छेम[2] सकल, सुख-सम्पदा॥
तहाँ जाति-कुल नहीं विचार।
कौन सु उत्तम, कौन गँवार।
सार भजन हरिवंश कौ॥
या रस मगन मिटै भव त्रास[3]।
सुनहु रसिक हरिवंश-विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥ ३॥
श्री हरिवंश सुजस[4] गाइयौ।
सो रस सब रसिकनि पाइयौ।
कियो सुकृत[5] सबको फल्यौ[6]॥
या रस में विधि नहीं निषेध[7]।
तहाँ न लगन[8] ग्रहन[9] के वेध[10]।
तहाँ कुदिन दिन कछु नहीं॥
नहिं शुभ-अशुभ, मान-अपमान।
नहिं अनृत,[11] भ्रम, कपट, सयान[12]।
स्नान-क्रिया, जप-तप नहीं॥

---

१ श्रीहरिवंश के द्वारा उत्पन्न किया हुआ २ कुशल ३ जन्म-मरण का दुःख, ४ श्री श्यामा श्याम का रास-विलास ५ पुण्य, ६ फल देने लगा, ७ कर्तव्य और अकर्तव्य, ८ मेषादिक बारह लग्न, ९ सूर्यादिक नवग्रह १० प्रवध, ११ असत्य १२ चतुराई।

ज्ञान ध्यान तहाँ सकल प्रयास[1]।
सुनहु रसिक हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥ ४ ॥
जहाँ हरिवंश प्रेम-उन्माद[2]।
तहाँ कहाँ स्वारथ निस्वाद[3]।
वाद विवाद तहाँ नहीं ॥
जे हरिवंश-नाद[4] मोहिये[5]।
तिनि फिर बहुरि न कुल-क्रम किये।
जिये काल-वस ना परे ॥
कुल बिनु कहौ कौन-सो पाक[6]।
सहज प्रेम रस सांचे पात्र[7]।
रंक-ईश[8] समुझत नहीं ॥
विप्र न शूद्र कौन कुल कास[9]।
सुनहु रसिक हरिवंश विलास।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥ ५ ॥
या रस विमुख करत आचार।
प्रेम बिना जु सब कृस[10] आर[11]।
आर धरत मत[12] विप्र[13] को ॥

---

१ परिश्रम २ मत्तता ३ ज्ञान-हीन ४ वाणी ५ मोहित हुए ६ पाक पवित्र साफ ७. पात्र होना, ८. गरीब अमीर, ९ लिप्सा, १० कम ११ काटने वाली करौती १२ क्यों १३ ब्राह्मण।

श्रीहरिवंश किशोर[1] अहीर[2] ।
अरु तिन संग सखिगन[3] की भीर ।
तीर जमुन नित खेलहीं ॥

तिन की दई जु जूठन खात ।
आचारी[4] निज[5] कहत खिस्यात[6] ।
बात यहै साँची सदा ॥

श्रीहरिवंश कहत नित जास[7] ।
सुनहु रसिक हरिवंश विलास ।
श्रीहरिवंशहि गावहीं ॥६॥

निशिदिन कहत पुकारि पुकारि ।
स्तुति करहु देहु कोउ गारि ।
हारि न अपनो मानि हौं ॥

श्रीहरिवंश-चरण नहिं तजौं ।
अरु तिनके भजननि[8] कौं भजौं ।
लजौं नहीं अति निडर ह्वै ॥

श्रीहरिवंश नाम-यश लहौं ।
अपने मन भाई सब कहौं ।
रहौं शरण हरिवंश की ॥

---

१ श्री श्यामाश्याम, २ क्षत्रिय ३ सखियों की, ४ आचार-विचार करने वाले, ५ अपने को, ६ लज्जित होते हैं ७ जिसको ८. भजन करने वाले ।

कहत न बनत प्रेम-उल्लास ।
सुनहु रसिक हरिवंश-विलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइ हौं ॥७॥

जे हरिवंश प्रेम रस भिले[1] ।
क्यों सोहैं[2] लोगनि में मिले ।
गिल्यो-काल[3] जग देखिये ॥

कर्म सकाम न कबहूं करें ।
स्वर्ग न इच्छें, नर्क न डरें ।
धर्म हरिवंश कौ ।

श्रीहरिवंश धर्म निबहैं[4] ।
श्रीहरिवंश प्रेम रस लहैं ।
ते सब श्रीहरिवंश के ॥

'सेवक' तिन दासनि कौ दास ।
सुनहु रसिक हरिवंश विलास ।
श्रीहरिवंशहि गाइहौं ॥ ८ ॥

इति श्रीहरिवंश रस- विश्राम प्रकरण ॥२॥



---

१ भोग २ शोभा पाते हैं, ३ काल-ग्रसित, ४ निर्वाह करते हैं ।

❀ अथ श्रीहरिवंश-नाम-प्रताप जस ❀

(त्रिपदी छन्द)

श्रीहरिवंश नाम नित कहौं।
नाम प्रताप नाम-फल लहौं।
नाम हमारी गति सदा॥
जे सेवें हरिवंश सुनाम।
पावें तिन चरणनि विश्राम।
नाम-रटन सतत करें॥
नाम प्रसङ्ग[1] कहत उपदेश।
जहँ यह धर्म धन्य सो देश।
धन्य सुकुल जेहि जन्म भयौ॥
धन्य सुतात धन्य सो माइ।
संतत रसिक सुनहु चित लाइ।
श्रीहरिवंश-प्रताप जस॥१॥
प्रथम हृदय श्रद्धा जो करै।
आचारजनि आइ अनुसरै[2]।
जहाँ-जहाँ हरिवंश के॥
रसिकनि की सेवा जब होइ।
प्रीति सहित बूझहु[3] सब कोइ।
कौन धर्म हरिवंश को॥

---

१ सम्पन्न, २ शरण ग्रहण करे, ३ पूछो।

कौन सुरीति, कौन आचरन ।
कौन सुकृत जेहि पावै सरन ।
क्यों हरिवंश कृपा करै ॥
सब सब धर्म कह्यो समुझाइ ।
सन्तत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश-प्रताप जस ॥२॥
प्रथमहिं सेवहु गुरु के चरन ।
जिन यह धर्म कह्यो सब करन ।
नाम-प्रताप बताइयौ ॥
जो हरिवंश नाम अनुसरहु ।
निशिदिन गुरु की सेवन करहु ।
सकल समर्पन प्रान धन ॥
गुरु-सेवा तजि करहिं जे आनि[1] ।
यहै अधम, यहै सब हानि ।
कानि[2] न रसिकनि में रहै ॥
गुरु-गोविन्द न भेद कराइ ।
सन्तत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश-प्रताप जस ॥३॥
गुरु-उपदेश सुनहु सब धर्म ।
श्रीहरिवंश नाम-फल-मर्म ।
जस भाख्यौ वचननि सुमत ॥

1 भली प्रकार समाप्त, 2 प्रतिष्ठा ।

शुक-मुख-वचन 'बु श्रवन सुनावहु ।
तब श्रीहरिवंश सुनाम कहावहु ।
मन सुमिरन बिसरै नहीं ॥
हरि-गुरु चरण सेवा अनुसरहु ।
अर्चन-वंदन सतत करहु ।
दासतन करि सुख लहौ ॥
सख्य-समपन भक्ति बढ़ाइ ।
संतत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश - प्रताप जस ॥४॥
गुरु-उपदेश चलहु यह चाल ।
ऐसो भक्ति करहु बहु काल ।
ये नव लक्षन भक्ति के ॥
यह हरि-भक्ति करै जब कोइ ।
तब हरिवंश नाम रति होइ ।
यह जु बहुत हरि की कृपा ॥
हरि-हरिवंश भेद नहिं करै ।
श्रीहरिवंश नाम उचरै[2] ।
छिन छिन प्रति बिसरै[3] नहीं ॥
प्रीति सहित यह नाम कहाइ ।
संतत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश प्रताप जस ॥ ५ ॥

---

१ श्रीमद्भागवत २ उच्चारण करे, ३ भूलें नहीं ।

गुरु-उपदेश चलहु एहि रीति ।
श्रीहरिवंश नाम-पद प्रीति ।
प्रेम - मूल यह नाम है ॥
प्रेमी रसिक जपत यह नाम ।
प्रेम-मगन निजु धन[1] विश्राम[2] ।
श्रीहरिवंश जहाँ रहैं ॥
प्रेम - प्रवाह परें जन सोइ[3] ।
तब क्यों लोक-वेद सुधि होइ ।
जब हरिवंश कृपा करी ॥
व्रत-संयम सब कौन कराइ ।
सतत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश - प्रताप जस ॥६॥
जब यह नाम हृदय आइ है ।
तब सब सुख-सम्पति पाइ है ।
श्रीहरिवंश - सुजस कहै ॥
अरु अपनी प्रभुता नहिं सहै[4] ।
तृन तें नीच अपनपौ[5] कहै ।
शुभ अरु अशुभ न आनहीं ॥
समुझ नहीं कछु कुल-क्रम ।
सूधो चलत आपने धम ।
रसिकन सौं प्रीतम कहै ॥

१ श्रीवृन्दावन २ स्थिति ३ जो, ४ सहन करें, ५ अपने आपको।

कबहुँ कास वृथा नहिं जाइ ।
सतत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश प्रताप बस ॥ ७ ॥
जब श्रीहरिवंश-नाम जानि है ।
तब सबही तें लघु मानि है ।
हँसि बोल बहु मान द ॥
तद-सम सहज सीलता होइ ।
परम उदार कहैं सब कोइ ।
सोच न मन कबहुँ करै ॥
श्रीहरिवंश सुजस मन रहै ।
कोमल बचन रचन[1] मुख कहै ।
परम सुखद सब कौं सदा ॥
दुसह बचन कबहुँ न कहाइ ।
सतत रसिक सुनहु चित लाइ ।
श्रीहरिवंश प्रताप जस ॥८॥
प्रगट धम बसे जानिये ।
श्रीहरिवंश नाम जा हिये ।
नाम सिद्धि पहिचानिये ॥
श्रीहरिवंश नाम सब सिद्धि ।
सबं रसिक बिलसैं नव निद्धि ।
भुगतें,[2] देंहिं[3], न मांगहीं ॥

---

१ वाणी, २ स्वयं उपभोग करते हैं, ३ देते हैं,

पोषन भरन न चित' कराहिं ।
श्रीहरिवंश विभव विलसाहिं' ।
वृन्दावन की माधुरी ॥
गुन गावत जु रसिक सचु पाइ ।
सतत रसिक सुनहु चितलाइ ।
श्रीहरिवंश प्रताप जस ॥६॥
श्रीहरिवंश-धर्म जे धरहिं' ।
श्रीहरिवंश नाम उच्चरहिं ।
ते सब श्रीहरिवंश के ॥
श्रवन सुनहिं जे श्रीहरिवंश ।
मुख बरनत बानी हरिवंश ।
मन सुमिरत हरिवंश को ॥
ऐसे रसिक कृपा जो करहिं ।
तो हमसे सेवक निस्तरहिं' ।
मूढ़नि न पावें सदा ॥
'सेवक' शरण रहै गुण गाइ ।
सतत रसिक सुनहु चितलाइ ।
श्रीहरिवंश प्रताप-जस ॥१०॥

॥ श्रीहरिवंश-नाम प्रताप-जस प्रकरण ॥ ३ ॥

---

१ चिन्ता २ उपभोग करते हैं ३ धारण करते हैं ... भव जाय ।

❀ अथ श्रीहरिवंश-वाणी प्रकरण ❀

(राग भाव छन्द चुपई चाल धाठ)

समुझो श्रीहरिवंश सुवानी।
रसद[1], मनोहर, सब जग जानी॥
कोमल, ललित, मधुर पद-श्रेनी[2]।
रसिकनि कौं जु परम सुख देनी॥
श्रीहरिवंश नाम उच्चार।
नित-विहार-रस कह्यौ अपार॥
श्रीवृन्दावन-भूमि बखानीं।
श्रीहरिवंश कहे ते जानीं॥
श्रीहरिवंश गिरा[3] रस सूधी[4]।
कछु नहिं कहौं आपनी बूधी[5]॥
श्रीहरिवंश-कृपा मति पाऊँ।
सब रसिकनि कौं गाइ सुनाऊँ॥१॥
श्रीहरिवंश जु श्रीमुख भाखी[6]।
सो बन भूमि चित्त में राखी॥
हौं लघु मति नहिं लहौं प्रमाना[7]।
जानत श्रीहरिवंश सुजाना॥
नव-पल्लव-फल फूल अनंता।
सदा रहत ऋतु शरद-बसंता॥

---

१ रस-दायानी, २ पदों की परम्परा ३ वाणी, ४ रसपूर्ण, ५ बुद्धि ६ कही, ७ माप।

श्रीवृन्दावन सुन्दरताई ।
श्रीहरिवंश नित्य प्रति गाई ॥२॥

श्रीवृन्दावन नव-नव कुञ्ज ।
श्रीहरिवंश प्रेम-रस-पुञ्ज[1] ।

श्रीहरिवंश करत नित केली ।
छिन छिन प्रति नव-नव रस झेली[2] ॥

कबहुँक निर्मित तरल[3] हिंडोला ।
झूलत-फूलत करत कलोला[4] ॥

कबहुँक नव-दल सेज रचावहिं ।
श्रीहरिवंश सुरत रति गावहिं ॥३॥

सुरत-अन्त छबि बरनि न जाई ।
छिन छिन प्रति हरिवंश जु गाई ॥

आज सँभारत नाहिंन[6] गोरी ।
अङ्ग-अङ्ग छबि कहाँ सु थोरी[7] ॥

नैन-बैन भूषन जिहिं भाँती ।
यह छबि मोप बरनि न जाती ॥

प्रेम प्रीति रस रीति बड़ाई ।
श्री हरिवंश-बचन सुखदाई ॥४॥

---

१ रस के समूह २ पान करना ३ चपल, ४ आनन्द-क्रीड़ा, ५ सामान्य, ६ प्रेम के वश का भ्रम नहीं पा रहा ? ७ जो कहीं वह थोड़ा है ।

बंश बजाइ विमोहित नारी[1]।
बोलीं संग सु नित्य विहारी ॥
परिरंभन चुम्बन रस-केली।
विहरत कुँवर कंठ भुज मेली ॥
सुन्दर रास रच्यौ बन माँही।
यमुना पुलिन कल्पतरु छाँही ॥
रास रंग रति बरनि न जाई।
नित-नित श्रीहरिवंश सु गाई ॥५॥
श्री हरिवंश प्रेम रस गाना।
रसिक विमोहित परम सुजाना ॥
अंसनि पर भुज दिये विलोकत।
तृपित न सुंदर मुख अवलोकत ॥
इन्दु बदन[2] दीसत बिबि ओरा[3]।
चारु[4] सुलोचन तृषित[5] चकोरा ॥
करत पान रस-मत्त सदाई[6]।
श्री हरिवंश प्रेम रति[7] गाई ॥६॥
श्रीहरिवंश सुरीति सुनाऊँ।
श्यामा-श्याम एक संग गाऊँ ॥
छिन इक कबहुँ न अन्तर होई।
प्राण सु एक देह है दोई ॥

---

१ गोपीजन, २ चन्द्र मुख, ३ दोनों ओर, ४ सुन्दर ५ प्यासे ६ सदैव, ७ प्रेम का प्रेम।

राधा-संग बिना नहिं श्याम।
श्याम बिना नहिं राधा-नाम॥
छिन छिन प्रति आराधत रहहीं[1]।
राधा-नाम श्याम तब कहहीं॥
ललितादिकनि संग सचु पावे।
श्रीहरिवंश सुरत रति गावे॥७॥

श्रीहरिवंश गिरा-जस गाये।
श्रीहरिवंश रहत सचु पाये॥
श्रीहरिवंश-नाम परसंगा[3]।
श्रीहरिवंश-गान इक संगा।
मन-क्रम[4]-वचन कहौं नित टेरे[5]।
श्रीहरिवंश प्राण-धन मेरे॥
सेवक श्रीहरिवंशहि गावे।
श्रीहरिवंश-नाम रति पावे॥८॥

छप्पय छन्द

जयति जगदीश-जसहि जगमगत जगत गुरु,
जगत-वंदित सु हरिवंश-बानी।
मधुर, कोमल-सुपद, प्रीति-आनन्द रस,
प्रेम विस्तरत हरिवंश-बानी।

१ आराधना करते रहते हैं। २ मुख ३ प्रसंग मु...
४ कर्म, ५ पुकार कर, ६ श्यामा श्याम का मन।

रसिक रस-मत्त श्रुति[1] सुनत पीवत रस
रसनि[2] गावत हरिवंश-बानी।
कहत हरिवंश-हरिवंश हरिवंश हित,
जपत हरिवंश हरिवंश-बानी ॥१॥
कहौ नित केलि रस-खेल वृन्दाविपिन,
कुञ्ज तें कुञ्ज डोलनि[3] बखानौ[4]।
पट न परसत,[5] निकसत[6] बीथिनु[7] सघन,
प्रेम-विह्वल सु नहिं देह-मानौ[8] ॥
मगन चित तित[9] चलत, छिन सु डगमग मिलत,
पथ[10] बन देत अतिहेत[11] जानौ।
रसिक हित परम आनन्द अवलोकि तन,
सरस विस्तरत हरिवंश-बानी ॥२॥
वंश रस-नाद[12] मोहित सकल सुन्दरी,
आनि[13] रति मानि कुल छाँड़ि कानी[14]।
बाहु परिरम्भ, नीवी उरज परसि हँसि,
उमँगि रतिपति रमित[15] रीति जानी ॥
यूथ युवतिनु खचित, रासमण्डल रचित,
गान गुन निरत आनन्द-दानी।

---

१ कानों के द्वारा २ जिह्वा के द्वारा ३ घूमना
४ वर्णन करो ५ स्पर्श करना ६ निकलना ७ गलियाँ
८ शरीर का ध्यान रखने वाले ९ इधर-उधर १० मार्ग
११ प्रेम १२ वंशी-नाद १३ आकर १४ मर्यादा १५ क्रीड़ा।

तत-थेई थेई करत, गतिन नूतन धरत,
रास-रस-रचित हरिवंश-बानी ॥१॥

रास रस रचित बानी जु प्रगटित जगत,
सुद्ध[1] अविरुद्ध[2] परसिद्ध[3] जानी ।
स्याम स्यामा प्रगट, प्रगट अक्षर[4] निकट,
प्रगट रस स्रवत, अति मधुर बानी ॥
सो जु बानी रसिक नित्य निशि दिन रटत,
कहत अरु सुनत रस-रीति जानी ।
ताहि तजि और गाऊँ न कबहूँ कछू,
प्राण रमि रही हरिवंश-बानी ॥३॥
भाग अनभाग जानत जु नहिं आपनौं,
कौन-धौं लाभ अरु कौन हानी ।
प्रगट निधि छाँड़ि कत फिरत द का[5] करत,
भरम[6] भटकत सुनहि भूल जानी ॥
प्रीति बिनु रीति रच्यो जु लागति सकल,
जुगत[7] करि होत कत[8] गर्वित-मानी[9] ।
रसिक जो सद्य[10] चाहत जु रस-रीति फल,
सो कह्यौ अरु सुनौ हरिवंश-बानी ॥५॥

---

१ शुद्ध प्रेमाभक्ति में पूर्ण २ विरोध हीन ३ प्रसिद्ध ४ पदों के शब्द ५ पुकार ६ भ्रम ७ बनावट ८ क्यों ९ गर्विता व अभिमानी १० शीघ्र ।

यहै नित-केलि, येई जु नाइक निपुन,
यहै मन भूमि नित नित बखानी।
बहुत रचना करत, राग रागिनि धरत,
ताल-बधान सब ठौनि[1] आनी॥
ज्यों मूँघ[2] नहिं मिलत टकसार तें बाहिरी,
लाख में गर-मुहरी[3] जु जानी।
यौं जु रस-रीति बरनत न ठांई[4] मिलत,
जो न उच्चरत हरिवंश-बानी॥६॥
रसिक बिनु कहे सब ही जु मानत बुरौ,
रसिकई[5] कहो कैसे जु आनी।
आपनी-आपनी ठौर जेई तहां,
आपनी बुद्धि के होत मानी॥
निपट करि[6] रसिक जो होहु तैसी कहौ,
अब जु यह सुनौ मेरी कहानी।
जौरु तुम रसिक रस रीति के चाहिले[7],
तौरु मन देहु हरिवंश-बानी।७॥
वेद विद्या पढ़त बस धमनि करत,
जलपि[8] तन-बलप[9] की अवधि आनी।

---

१ जबरदस्ती, २ मुद्रा, ३ खोट मुद्रा, ४ प्रथम स्थान पर ५ रसिकता ६ वास्तविकता के साथ, ७ इच्छुक, ८ बकवाद करके, ९ शरीर के नाश की।

चाह-गति[1] छाँड़ि संसार भटकत भ्रमत,
आस की पासि[2] महि लोरि जानी ॥
सकल स्वारथ करत रहत जनमत-मरत,
दुख अरु सुख के होत मानी ।
छाँड़ि अजार कसे न निश्चय धरत,
एक छिन रमत हरिवंश-बानी ॥८॥
वृथा बतरान[3] करत धौस[4] खोवत सकल,
सोवतन[5] राति नहिं जात जानी ।
ऐसेई भाँति समुझ्यो न कबहूँ कछू,
कौन सुख दुख को लाभ हानी ॥
तब सुबस हरिवंश-गुन-नाम रसना रटत,
और बहु बचन प्रति दुख-दानी ।
हानि हरिवंश के नाम अन्तर परे,
लाभ हरियश उच्चरत बानी ॥९॥
नाम-बानी निकट श्याम-श्यामा प्रगट,
रहत निसिदिन परम प्रीति जानी ।
नाम बानी सुनत श्याम-श्यामा सुयस[6],
रसद माधुर्य अति प्रेम-बानी ॥

---

१ सुन्दर गति २ [illegible], ३ [illegible] ४ [illegible]
५ सोते-सोते ६ सुयश ।

नाम-मानी जहाँ श्याम-श्यामा तहाँ,
सुमत गावत मो मन जु मानी।
वलित[1] शुभनाम बलि विशद-कीरति[2] जगत,
हौं जु बलि जाउँ हरिवंश-बानी ॥१०॥

॥ छप्पय ॥

बलि-बलि श्रीहरिवंश नाम बलि-बलित विमल जस।
बलि-बलि श्रीहरिवंश कर्म-व्रत कृत[3] सु नाम-बस ॥
बलि-बलि श्रीहरिवंश बरन धर्मनि[4] गति जानत।
बलि-बलि श्रीहरिवंश नाम कलि प्रगट प्रमानत[5] ॥
हरिवंश नाम सु प्रताप बलि-बलित जगत कीरति विशद।
हरिवंश विमल-बानी सु बलि मृदु कमनीय[6] सुमधुर पद ।१

❀ इति श्रीहित वाणी प्रकरण ❀

❀ अथ श्रीहित इष्टाराधन प्रकरण ❀



॥ सुन्द गाथा ॥

प्रथम प्रणम्य[7] सुरम्य[8] मति मन बुधि चित्त प्रसंग।
चरण शरण सेवक सदा सु जन्ज श्रीहरिवंश ॥

---

१ बलिहारी २ महान कीर्ति, ३ किये, ४ वर्णाश्रम धर्म ५ स्थापित किया ६ सुन्दर ७ प्रणाम करके ८. सुन्दर।

श्रीहरिवंश विपुल गुण मिष्ट[1]।
श्रीहरिवंश उपासक-इष्ट[2]।
श्रीहरिवंश कृपा मति पाऊँ।
श्रीहरिवंश विमल गुण गाऊँ॥
गाऊँ हरिवंश नाम-जस निमल श्रीहरिवंश रमित प्रान।
कारज हरिवंश प्रताप सु उद्दित[3] कारन श्रीहरिवंश मन[4]॥
विद्या हरिवंश मंत्र चतुरक्षर[5] जपत सिद्धि, भव-उद्धरन[6]।
जं-ज हरिवंश जगत-मंगल-पर श्रीहरिवंश चरण शरण॥१
हरिरिति अक्षर बीज ऋषि वंशो शक्ति सु वंश।
नख सिख सुन्दर ध्यान धरि जं जं श्रीहरिवंश॥
श्रीहरिवंश सु सुन्दर ध्यान।
श्रीहरिवंश विशद विज्ञान[7]॥
श्रीहरिवंश नाम गुण रूप[8]।
श्रीहरिवंश प्रेम रस रूप॥
रसमय हरिवंश परम-परमाक्षर[9] श्रीहरिवंश कृपा-सदन।
आत्मा हरिवंश प्रगट परमानंद श्रीहरिवंश प्रमाणमन[10]
जीवन हरिवंश विपुल सुख-सम्पति
श्रीहरिवंश बलित बरष[11]।

---

१ मधुर २ श्रीहितप्रभु ही उपास्य हैं और यही साध्य हैं ३ प्रकाशित ४ बह गये हैं ५ चार अक्षर वाला ६ संसार से उद्धार ७ अनुभव-स्वरूप ८ स्वरूप, ९ परात्पर १० मन के लिए प्रमाण स्वरूप हैं ११ बहुत प्रचुर।

जै-जै हरिवंश जगत-मङ्गल पर,
श्रीहरिवंश चरण शरण ॥२॥

शरण निरापक[1] पद रमित[2] सकल अशुभ-शुभ नश ।
देत सहज निमस भगति जै-जै श्रीहरिवंश ॥
श्रीहरिवंश मुदित मन सोभं ।
श्रीहरिवंश वचन वर शोभ[3] ॥
श्रीहरिवंश काम-कृत[4] कार[5] ।
श्रीहरिवंश त्रिशुद्ध[6] विचारं ॥
पूजा हरिवंश नाम परमारथ,
श्रीहरिवंश विवेक पर ।
धीरज हरिवंश विरद[7] बल-धीरज[8],
श्रीहरिवंश अभद्र[9] हर ॥
सुखमा हरिवंश सुजस रस-सम्पट,
श्रीहरिवंश कमल चरण ।
जै-जै हरिवंश जगत-मंगल-पर,
श्रीहरिवंश चरण शरण ॥३॥

श्रीहरिवंश सुगोत-कुल, देव-जाति हरिवंश ।
श्रीहरिवंश स्वरूप हित, रिद्धि सिद्धि हरिवंश ॥

---

१ दल वाल २ चरणों में रमण करने वाले (मन रमण वाले) ३ शोभा ४ शरीर से किये हुए, ५ कर्म ६ मन-वाणी-कर्म के द्वारा शुद्ध ७ यश, ८ बलबोध ९ अशुभ

श्रीहरिवंश विदित विधि-भेद[1]।
श्रीहरिवंश सु तत्व अभेद[2]॥
श्रीहरिवंश प्रकाशित जोग[3]।
श्रीहरिवंश सुकृत सुख भोग॥
प्रज्ञा[4] हरिवंश प्रतीति[5] प्रमानत[6],
प्रीतम[7] श्रीहरिवंश प्रिय।
गाथा[8] हरिवंश गीत[9] गुण गोचर[10],
गुपत[11] गुमत[12] हरिवंश गिरा[13]॥
सेवक हरिवंश-सार संचित[14] सब,
श्रीहरिवंश धर्म धरन।
जै-जै (श्री) हरिवंश जगत मंगल पर,
श्रीहरिवंश चरण शरणं॥ ३॥

छप्पय

जै जै श्रीहरिवंशचन्द्र द्विजवर[15] कुल-मण्डन[16]।
जै-जै श्रीहरिवंशचन्द्र कलि-तम भय-खण्डन[17]॥
जै-जै श्रीहरिवंशचन्द्र अकलंक प्रकाशित।
जै-जै श्रीहरिवंशचन्द्र सब जग प्रभासित[18]॥

---

१ धर्म की विधि २ अद्वय ब्रह्म-तत्त्व ३ अष्टांग योग ४ सम्यक् विवेकिनी बुद्धि ५ विश्वास, ६ प्रमाणित करना, ७ परमप्रिय ८ चरित्र ९ गान १० प्रत्यक्ष ११ रहस्य १२ प्रगट करती है १३ वाणी १४ एकत्रित करना। १५ श्रीव्यासमिश्रजी १६ शोभा १७ संसार के अन्धकार का नाश करने वाले, १८ प्रकाशित।

(दो) हरिवंशचन्द्र अमृत बरषि,
सकल-जन्तु[1] तापनि[2] हरण।
सेवक समीप सतत रहौ सु,
श्रीहरिवंश चरण शरण ॥१॥

इति श्रीहित इष्टाराधन प्रकरण ॥५॥

❀ अथ श्रीहित-धर्मिन-कृत प्रकरण ❀

छन्द तोटक

पहिले हरिवंश सुनाम कहौं।
हरिवंश-सुधर्मिन संग गहौं[3] ॥
हरिवंश सु नाम सदा तिनकैं।
सुख-सम्पति दम्पति सु जिनकै ॥१॥

हरिवंश सुनाम कहौं नित कै।
नित हौं कहौं कृत्य सुधर्मिन के[4]।
हरिवंश उपासन है तिनकैं।
सुख-सम्पति दम्पति सु जिनकैं ॥२॥

हरिवंश गिरा रस-रीति कहै।
सुकृती-जन[5] सद्गति नित्य रहै ॥

---

१ जीव मात्र, २ दुःखों को ३ प्राप्त करो ४ नाम के साथ मिला हुआ स्वधर्मियों का कृत्य कहता है ५ पुण्य शील लोग।

कछु धम विरुद्ध नहीं तिन कैं ।
सुख-सम्पति सम्पति जू जिन कैं ॥३॥

हरिवंश प्रशंसत नित्य रटैं ।
रस रीति-विसर्गित[1] कृत्य[2] कहैं ॥
जु कछू कुल-कम नहीं तिन कैं ।
सुख-सम्पति सम्पति जू जिन कै ॥४॥

हरियश-सुनाम जु नित्य रटे ।
छिन-जाम समान न नकु घटैं ।
विधि और निषेध नहीं तिन कै ।
सुख-सम्पति सम्पति जू जिन कैं ॥५॥

हरिवंश-सुधम जु नित्य कर ।
हरिवंश कहौ सु नहीं विसर ॥
हरिवंश सदा निधि[3] है तिनकै ।
सुख-सम्पति सम्पति जू जिन कैं ॥६॥

हरिवंश प्रतापहिं जानत हैं ।
हरिवंश प्रबोध[4] प्रमानत हैं ।
हरिवंश सु सवसु है तिन कै ।
सुख-सम्पति सम्पति जू जिन कैं॥७॥

हरिवंश विचार परे जु रहैं ।
हरिवंश-धरम्म धुरा[5] निबहैं ॥

---

१ दृष्ट २ किया ३ सम्पत्ति ४ शिक्षा, ५ नार,

हरिवंश निबाहक[1] है तिनकें।
सुख-सम्पति सम्पति जु जिन कें ॥८॥
हरिवंश-रसायन[2] पीवत है।
हरिवंश कहे सुख जीवत है॥
हरिवंश पतिव्रत है तिन कें।
सुख-सम्पति सम्पति जु जिन कें॥६॥
हरिवंश गिरा रस रीति भन।
हरिवंश कहैं, हरिवंश सुनैं॥
हरिवंश हृदय-व्रत है तिन कें।
सुख-सम्पति सम्पति जु जिन कें॥१०॥
हरिवंश कृपा हरिवंश कहैं।
हरिवंश कहैं, हरिवंश सहैं॥
हरिवंश सुलाभ सदा तिन कें।
सुख-सम्पति सम्पति जु जिन कें॥११॥
हरिवंश परायन* प्रेम भरे।
हरिवंश सु मन्त्र जपें सुधरे॥
हरिवंश सु ध्यान सदा तिन कें।
सुख-सम्पति सम्पति जु जिन कें॥१२॥

---

१ निर्वाह करने वाले २ अमृत।

*सेवक वाणी के टीकाकार श्रीहरिलाल व्यास ने 'परायन' के स्थान में 'रसायन' पाठ रखा है।

नित श्रीहरिवंश सु नाम कहैं।
नित राधिका-श्याम प्रसन्न रहैं॥
नित साधन और नहीं तिन कै।
सुख-सम्पति दम्पति जू जिन कै॥१४॥

जब राधिका-श्याम प्रसन्न भये।
तब नित्य समीप सु खैंचि लये॥
हरिवंश समीप सदा तिन कै।
सुख-सम्पति दम्पति जू जिन कै॥१४॥

छप्पय

नित नित श्रीहरिवंश-नाम छिन छिन जु रटत नर।
नित नित रहत प्रसन्न जहाँ दम्पति किशोर-वर॥
जहाँ हरि तहाँ हरिवंश, जहाँ हरिवंश तहाँ हरि।
एक शब्द हरिवंश-नाम राख्यौ समीप करि॥
हरिवंश नाम सु प्रसन्न हरि, हरि प्रसन्न हरिवंश रति।
हरिवंश-चरण-सेवक जिते सुनहु रसिक रस रीति गति॥१

इति श्रीहित-धर्मनि षष्ठ प्रकरण ॥६॥

❀ अथ श्रीहित रस-रीति प्रकरण ❀

[छन्द रड़ा]

व्यासनन्दन जगत आधार ।
जगमगत जगजस, सब जग वन्दनीय, जगभय विहंडन[1] ।
जगशोभा, जगसम्पदा, जगजीवन, सबजग-मण्डन ॥
जग-मंगल, जग-उद्धरन, जगनिधि[2], जगत-प्रकाश ।
चरण शरण सेवक सदा सु जय-जय श्रीहरिवंश ॥१॥

जयति यमुना विमल-वर-वारि ।
शीतल तरल तरंगिनी[3], रत्न-खचित[4] विधि[5] तट विराजत ।
प्रफुल्लित विविध सरोजगन चक्रवाक[6] कुल हंस राजत ॥
कूल विशद, वनद्रुम सघन, लता भवन अतिरम्य ।
नित्य-केलि हरिवंश हित सु ब्रह्मादिकनि अगम्य[7] ॥२॥

सुघर सुन्दर सुमति सबस ।
सतत सहज सदा सबन सघनपुञ्ज सुमनपुञ्ज बरसत ।
सौरभ सरस सुमन चय[8] सज्जित सैन सचु[9] रंग हरसत ॥
केलि विशद आनन्द रमत बेलि बकुल नित ठाम ।
ठेलि[10] निगम-मग[11] पग सुभग डोलत कुँवर वर धाम[12] ॥३

---

१ नष्ट करने वाला, २ जग के सर्वस्व ३ तरंग वाली ४ रत्नजटित, ५ दाना ६ चकवा पक्षी ७ जहाँ पहुँचा न जा सके ८ चयन सुमना ९. सुख १० दूर हटा कर ११ वेद मार्ग १२ श्रीश्यामा-श्याम ।

रसिक रमनी रसद रस-रासि ।
रस-सींवाँ, रस सागरो, रसनिकुञ्ज रसपुञ्ज बरसत ।
रसनिधि,सुविधि रसज्ञ[१],रस-रेख[२]रीति-रस,प्रीति हरसत॥
रस मूरति, मूरति सरस, रस-बिलसनि रस रग ।
रस प्रवाह सरिता सरस, रति-रस लहरि तरग ॥४॥

श्यामसुन्दर उरसि[३] बनमाल ।
उरगभोग[४]भुजदण्ड वर, कम्बुकण्ठ[५]मनि-गन विराजत ।
पुञ्जितकच[६] मुख तामरस[७]मधु-लम्पट जनु मधुप राजत॥
शीश मुकुट, कुण्डल श्रवन, मुरली अधर त्रिभग ।
कनक-कपिस[८]पट शोभि अति,जनु घन दामिनि सग॥५॥

सुभग-सुन्दरी, सहजसिङ्गार ।
सहजशोभा सर्वाग प्रति,सहजरूप वृषभानु नन्दिनी ।
सहजानन्द कदम्बिनी[९],सहज विपिन बरउदित चन्दिनी॥
सहज केलि नित नित नवल, सहज रङ्ग सुख-चैन ।
सहज माधुरी अग प्रति सु मोपै कहत बन न ॥६॥

विपिन निसत रसिक रस रासि ।
दम्पति प्रति प्रानन्द बस, प्रेममत्त निर्गंध ग्रीउत ।

---

१ रस का ज्ञाता २ माना ३ हृदय पर ४ सर्प का फण
५ शख के समान तिवली युक्त कण्ठ ६ घुघराले बाल ७ कमल
८ पीला ९ मेघमाला ।

चचल कुण्डल कर चरण मन लोल रतिरंग बीड़त[1] ।
झटकत पट, चुटकिन चटक, लटकत लट, मृदु हास
पटकत पद, उघटत शबद,मटकत भृकुटि विलास ॥७॥
नवल नागरि नवल युवराज ।
नव-नव वन घन क्रीडत, नवनिकुञ्ज विलसत सवसु ।
नव-नव रति नित नित बढ़त, नयौ नेहु नवरंग नयौ रसु ।
नवविलास कल हास नव, मधुर सरस मृदु बैन ।
नवकिशोर हरिवंश हित सु नवल-नवल सुख चैन ॥८॥

॥ छप्पय ॥

नवल-नवल सुख चैन ऐन आपने आपु बस ।
निगम लोक मर्याद भंजि[2] क्रीडत[3] रङ्ग रस ॥
सुरत प्रसङ्ग निशङ्क करत जोई-जोई भावत मन ।
ललित अङ्ग बलि भंगि भाइ[4] लज्जित सु कोकगन[5] ॥
अद्भुत विहार हरिवंश हित,
निरखि दासि सेवक जियत ।
विस्तरत, सुनत, गावत रसिक
सु नित नित लीला रस पियत ॥६॥

---

१ लज्जित होते हैं २ तोड़ कर, ३ क्रीड़ा करते हैं
४ भाव भंगी ५ काम रस शास्त्रों का समूह।

इति श्रीहित रस रीति प्रकरण ॥७॥

❀ अथ श्रीहित अनन्य टेक प्रकरण ❀

॥ सवैया ॥

कर्म धर्म कोउ करहु वेद-विधि,
कोउ बहुविधि देवतनि उपासी ।
कोउ तीरथ तप ज्ञान ध्यान व्रत,
अरु कोउ निर्गुण ब्रह्म उपासी ।
कोउ यम-नेम करत अपनी रुचि,
कोउ अवतार-कदम्ब[1] उपासी ।
मन-क्रम-वचन त्रिशुद्ध सकल मत,
हम श्रीहितहरिवंश-उपासी ॥१॥
जाति पाँति कुल-कर्म धर्म व्रत,
संसृति-हेतु[2] अविद्या नासी ।
सेवक-रीति प्रतीति[3] प्रीति हित,
विधि निषेध शृंखला[4] विनासी ॥
अब जोई कहो कर हम सोई,
आपसु[5] लिये बस निज दासी ।
मन-क्रम-वचन त्रिशुद्ध सकल मत,
हम श्रीहितहरिवंश उपासी ॥२॥
ी हरिवंश को नाम सुनावै,
तन-मन-प्राण तासु बलिहारी ।

समूह २ जन्म मरण का कारण ३ निश्चय ४ बन्धन
ज्ञा ।

जो हरिवंश-उपासक सेवै,
सदा सेऊँ ताके चरण विचारी ॥
जो हरिवंश-गिरा जस गावै,
सवसु देहुँ तासु पर वारी ।
जो हरिवंश को धर्म सिखावै,
सोई तो मेरे प्रभु तें प्रभु भारी ॥३॥

(मालती छन्द)

श्रीहरिवंश सुनाम विमोही¹,
पुनि पुनि नित्य तहाँ मन देहौं ।
श्रीहरिवंश सुनत बसौं संग,
हौं तिन संग नित्यप्रति रहौं ॥
श्रीहरिवंश विलास रास-रस,
श्रीहरिवंश संग अनुभहौं² ।
जो हरिनाम जगन्नि शिरोमणि,
'वंश' बिना कबहूँ नहिं लहौं ॥४॥

(मदिरा छन्द)

प्रेमी अनन्य भजत न होइ,
जो अन्तरजामी³ भजै मन में ॥
जो भजि देख्यो यशोदा को नन्दन,
विदय दिखाई सब तन में ॥
श्रीहरिवंश सु नाम विमोहीं ते,
गुरु समीप मिलौं छिन में ।

---

१ मोहित हुई, २ अनुभव करूँगा ३ अप्रगट स्वरूप,

अब यामें मिलौनी[1] मिलै न कछू,
अब खेलत रास सदा मन में ॥५

(मालती छन्द)

जो बहु मान करै कोउ मेरो,
किये बहु मानत नाहि बड़ाई ।
जो अपमान करै कोउ कैहू[2],
किये अपमान नहीं लघुताई[3] ॥
श्रीहरियश गिरा रस सागर,
माँझ मगन सब निधि पाई ।
जो हरियश तजों, भजों औरहि,
तौ मोहि श्रीहरियश-दुहाई[4] ॥६॥

(पदावली)

कहौ बन-केलि निकुञ्ज निकुञ्जनि,
नवदल नूतन सेज रचाई ।
नाथ 'विरमि विरमि' कहौ,
तब सो रति संसोयो[5] कसे जुसाई ॥
'सत्वर उठे महामधु पीयत',
माधुरी यामो मेरे मन भाई ।
जो हरियश तजों, भजों औरहि,
तौ मोहि श्रीहरियश-दुहाई ॥७॥

---

१ मिलावट २ किसी प्रकार ३ [illegible] ४ शपथ
५ उस प्रकार की ।

(मालती छन्द)

'भुज असनि दीने विलोकि रहे,
मुख चन्द उभै[1] मधु पान[2] कराई।'
आपु[3] विलोकि[4] हृदय कियौ मान,
चिबुक[5] सुचारु प्रलोइ[6] मनाई।
श्रीहरिवंश बिना यह हेत[7], को
जानै कहा, को कहै समुझाई।
जो हरिवंश तजौं, भजौं औरहिं,
तौ मोहि श्रीहरिवंश-दुहाई ॥८॥
श्रीहरिवंश सुलाड़, सुरीति,
सुगान मिलैं धन माधुरी गाई।
श्रीहरिवंश वचन्न रचन्न[8],
सु नित्य किशोर किशोरी लड़ाई[9] ॥
श्रीहरिवंश गिरा रस-रीति,
सु चित्त प्रतीति न आन[1] सुहाई।
जो हरिवंश तजौं, भजौं औरहिं,
तौ मोहि श्रीहरिवंश दुहाई ॥१॥
श्रीहरिवंश कौ नाम सु सयसु,
जानि सु रास्यौ मैं चित्त समाई।

---

१ दोनों २ मधुर-पान, ३ स्वयं को, ४ देखकर, ५ ठोढ़ी, ६ सहलाकर, ७ प्रेम, ८ वचन की रचना, ९ लाड़ (प्यार) किया, १ अन्य।

श्रीहरिवंश के नाम प्रताप को लाभ-
सह्यो सु कह्यो नहिं जाई ॥
श्रीहरिवंश कृपा तें त्रिगुण के,
साँचो यहै जु मेरे मन भाई ।
जो हरिवंश तजौं, भजौं औरहि,
सो मोहि श्रीहरिवंश-दुहाई ॥१०॥
देखे जु मैं अवतार सब भजि,
तहाँ-तहाँ मन लसो न जाई ।
गोकुलनाथ महा व्रज-वैभव,
लीला अनेक न चित्त लटाई[1] ।
एकहि रीति प्रतीति बँध्यो मन,
मोहीं[2] सब हरिवंश बजाई ॥
जो हरिवंश तजौं, भजौं औरहि,
सो मोहि श्रीहरिवंश-दुहाई ॥११॥
नाम अरठ[3] हरै अघपुञ्ज[4],
जगत करे हरि-नाम बड़ाई ।
सो हरिवंश समेत सँपूरण,
प्रेमी अनन्यनि को सुखदाई ।
श्रीहरिवंश कहत सुनत,
छिन छिन प्यास वृथा नहिं जाई ।
जो हरिवंश तजौं, भजौं औरहि,
सो मोहि श्रीहरिवंश-दुहाई ॥१२॥

---

१ मच्यो नहीं मना, २ मोहि न हुए, ३ माया ४ पापसमूह ।

॥ छप्पय ॥

श्रीहरिवंश सुप्राण, सु मन हरिवंश गनिज्ज[1]।
श्रीहरिवंश सुचित्त, मित्त[2] हरिवंश भनिज्ज[3] ॥
श्रीहरिवंश सु बुद्धि, बरन[4] हरिवंश नाम-जस ।
श्रीहरिवंश प्रकाश वचन, हरिवंश गिरा रस ॥
हरिवंश नाम बिसर न छिन, श्रीहरिवंश सहाइ भल[5] ।
हरिवंश शरण सेवक सदा, सु शपथ करी हरिवंश-बल॥

॥ इति श्रीहित अनन्य टेक प्रकरण ॥

❀ अथ अकृपा-कृपा प्रकरण ❀

(अकृपा-सोरठा)

सब जग देख्यौ चाहि[6] काहि[7] कहीं हरि भक्ति बिनु ॥
प्रीति कहूँ नहिं आहि[8], श्रीहरिवंश कृपा बिना ॥१॥
गुप्त प्रीति को अंग, संग प्रचुर[9] अति देखियत ।
नाहिन उपजत रंग, श्रीहरिवंश कृपा बिना ॥२॥
सुख बरनत रस रीति, प्रीति चित्त नहिं आवई ।
चाहत सब जग कीर्ति, श्रीहरिवंश कृपा बिना ॥३॥
गावत गीत रसाल, भाल तिलक शोभित घना[10] ।
बिनु प्रीतिहि बेहाल[11], श्रीहरिवंश कृपा बिना ॥४॥

---

१ गिनना चाहिए २ मित्र, ३ कहना चाहिये, ४ वर्णन
५ भली प्रकार सहायक ६ ध्यान पूर्वक, ७. किसका ८. है
९ अधिक, १० मोटा ११ विकल ।

नाचत मतिहि रसाल[१], सास न शोभित प्रीति बिनु।
जन थोंधे[२] मआस, श्रीहरिवश-कृपा बिना ॥५॥
मानत अपनो भाग, राग[३] करत अनुराग बिनु।
दीखत सकल अभाग, श्रीहरिवश-कृपा बिना ॥६॥
पढ़त जु वेद पुरान, ज्ञान न शोभित प्रीति बिनु।
खींचे अति अभिमान, श्रीहरिवश कृपा बिना ॥७॥
बरशन भक्त अनूप, रूप न शोभित प्रीति बिनु।
नरम-मदमत्त[४] भूप श्रीहरिवश-कृपा बिना ॥८॥
सुवर परम प्रवीन, सीन[५] न शोभित प्रीति बिनु।
ते सब दीखत दीन[६], श्रीहरिवश कृपा बिना ॥९॥
गुन-मानी ससार, और सकल गुन प्रीति बिनु।
बहुन धरत शिर भार, श्रीहरिवश-कृपा बिना ॥१०॥

॥ कृपा क सोरठा ॥

मुख बरनत हरिवंश, चित नाम-हरिवश रति।
मन सुमिरत हरिवश, यह जु कृपा हरिवश की ॥१॥
सब जीवनि सों प्रीति, रीति निबाहत आपनी।
श्रवन-नयन परतीति, यह जु कृपा हरिवश की ॥२॥
शत्रु मित्र सम जानि, मानि मान अपमान सम।
दुख-सुख लाभ न हानि, यह जु कृपा हरिवश की॥३

---

१ आम्र २ पथि ३ गान, ४ प्रेम में मस्त
५ प्रवीणता ६ मूढ़।

नित इक धर्मिन संग, रंग[1] बढ़त नित नित सरस ।
नित नित प्रेम अभंग, यह जु कृपा हरिवंश की ॥४॥
निरखत नित्य विहार, पुलकित तन रोमावली ।
आनँद नैन सुढार[2], यह जु कृपा हरिवंश की ॥५॥
छिन छिन श्रवन करत, छिन गावत आनंद भर ।
छिन छिन हहर हसंत, यह जु कृपा हरिवंश की ॥६॥
छिन-छिन विहरत संग, छिन छिन निरखत प्रेम भरि ।
छिन बस कहत अमग[3], यह जु कृपा हरिवंश की ॥७॥
निरखत नित्य किशोर, नित्य-नित्य नव-नव सुरत[4] ।
नित निरखत छवि भोर[5], यह जु कृपा हरिवंश की ॥८॥
तृपित[6] न मानत मन, कुसुमरंध्र[7] अवलोकि तन ।
यह सुख कहत बन न, यह जु कृपा हरिवंश की ॥९॥
कहा कहौं बड़ भाग, नित-नित रति हरिवंश हित ।
नित बढ़त अनुराग, यह जु कृपा हरिवंश की ॥१०॥

छप्पय

नित बढ़त अनुराग भाग अपनौ करि मानत ।
नित्य नित्य नवकेलि निरखि ननननि सचु मानत ॥
नित नित श्रीहरिवंश-नाम नव-नव रति मानत ।
नित नित श्रीहरिवंश कहत सोइ-सोइ सिर मानत[8] ॥

---

१ प्रेम का रंग २ प्रवाहित, ३ अतहोम ४ प्रेम-क्रीड़ा ५ प्रातःकालीन, ६ तृप्ति ७ पुष्पों के छिद्र, ८ शिरोधार्य करता हूँ ।

आपुनो भाग आपुन प्रगट कहत जु श्रीहरिवंश यत्न ।
हरिवंश भरोसे भये निडर सु नित गवत हरिवंश यत्न॥११

इति श्रीकृपा-अकृपा प्रकरण ॥६॥

❀ अथ श्रीहित भक्त-भजन प्रकरण ❀

(कुण्डलिया)

श्रीहरिवंश सु धर्म दृढ़ धर समुझत निजु रीति ।
तिनको हौं सेवक सदा सु मन-क्रम-वचन प्रतीति ॥
मन-क्रम-वचन प्रतीति प्रीति बिन[1] चरण पखारौं[2]।
नित प्रति जूठन खाउँ बरन भेदहि[3] न बिचारौं ॥
तिनकी सगति रहत जाति-कुल-मद सब नसहि ।
सतत सेवक सदा भजत जे श्रीहरिवंशहि ॥१॥

सब अनन्य साँचे सुविधि सबको हौं निजु दास ।
सुमिरन नाम पवित्र अति दरस परस अघ नास[4] ॥
दरस परस अघ-नास आस निजु सग करौं दिन ।
तिनमुख हरिजस सुनत श्रवन मानौं न तृपति छिन ॥
कलि अभद्र बरनत सहम कलि कामादिक दुद तब ।
सेवक शरण सदा रहै सुविधि साँचे अनन्य सब ॥२॥

राधावल्लभ भजत[5] भजि[6] भली-भली सब होइ ।
रसिक अनन्य सभासि[7]भनि भली-भली सब होइ ॥

---

१ गन्ध २ धोऊँ ३ जाति भेद ४ पाप का नाश
५ राधावल्लभ के भक्तों का ६ भजन कर, ७ समान मन बात ।

भली भली सब होइ जबहि हरिवंश चरण रति ।
भली भली सब होय रचित[1] रस रीति सधा मति ।
भली भली सब होइ भक्ति गुन रीति अगाधा ।
भली भली सब होइ भजत भजि श्रीहरि राधा ॥३॥
राधावल्लभ भजत भजि भली-भली सब होइ ।
अशुभ अनभलि[2] सब जग बिमुख तजौ सब कोइ ॥
बिमुख तजौ सब कोइ झूठ बोलत सचु मानत ।
दोष करत निरसक रक करि सतम जानत ॥
अभिमानी गर्विष्ठ लोभ मद-मत्त अगाधा ।
दुष्ट परिहरौ[3] दूरि भजत भजि श्रीहरि राधा ॥४॥
राधावल्लभ भजत भजि भली भली सब होइ ।
जिते विनायक[4] शुभ अशुभ विघ्न करं नहि कोइ ॥
विघ्न करं नहि कोइ डरें कलि-काल कष्ट भय ।
हर सकल संताप हरखि हरिनाम जपत जय ॥
श्रीवृन्दावन नित्य केलि मन करत अगाधा ॥
हितहरिवंश-किशोर ऊजत भजि श्रीहरि राधा ॥५॥
राधावल्लभ-भजत भजि भली भली सब होइ ।
त्रिविधि ताप नासहि सकल सब सुख-सम्पति होइ ॥
सब सुख-सम्पति होइ, होइ हरिपद चरण रति ।
होइ विदय विध नाश, होइ वृन्दावन मन गति[5] ॥

---

१ रंग गई २ बुरे, ३ त्याग दो ४ विघ्नराज,
५ मन की गति श्रीवृन्दावन के अधीन हो जाती है ।

होइ सुहृद सतसंग होइ रस-रीति अगाधा।
होइ सुजस जग प्रगट होइ पद प्रीति सु राधा ॥६॥
राधावल्लभ भजत भजि भली भली सब होइ।
भीर[1] मिटै भट-जनन[2] की भय भजन[3] हरि सोइ ॥
भय भजन हरि सोइ भरम भूल्यो भटकत चित।
भगवत भक्ति बिसारि बेद भागवत प्रीति रति ॥
भक्त-चरण धरि भाव तरत भवसिंधु अगाधा।
हितहरिवंश प्रताप भजत भजि श्रीहरि राधा ॥७॥
राधावल्लभ भजत भजि भली-भली सब होइ।
अन्य देव-सेवी सकल चलत पुंजीसी[4] खोइ[5] ॥
चलत पुंजीसी खोइ होइ-अहमिति[6] खीस[7] गँवावत।
सोइ छुपत[8] सब रस जोइ[9] कपिसम[10] जु नचावत ॥
भोइ[11] विषम विष विषय[12] कोइ सतगुरु नहिं साधा[13]।
धोइ सकल कलि-कलुष[14] होइ भजि श्रीहरि-राधा ॥८॥
राधावल्लभलाल बिनु जीवन-जनम अकत्थ[15]।
माया सब भूल कम-कृत[16] तुच्छ न लागे हत्थ ॥
तुच्छ न लागे हत्थ[17] साथ[18] समरथ[19] न कियौ[20] तथ।
साथ पुनत हरिविमुख सग यमपथ चलत जथ ॥

---

१ कष्ट २ यमदूत ३ भय का नाश करने वाले ४ सबसे मार्मिक ५ गँवार ६ ना जानकर ७ छिन ८ स्वाभिमान करना ९ रखो १० अन्त में समान ११ मनन हारा १२ विषय रूपी विष १३ प्राप्त हुआ १४ पाप १५ सहज योग्य मार्ग १६ किया गया, १७ हाथ १८ साथ १९ पतित्रता २० हुआ।

गाथ विमल[1] गुन गाथ करथ[2] जस भवन अगाधा ।
माथ मनायमि हित समय मोहन श्रीराधा ॥९॥

कमठ[3] कठिन[4] ससल्य[5] नित सोचत शीश धुनत[6] ।
श्रीहरिवंश प्रभु उधरी सोइ रस-रीति सुनत ॥
सोइ रस-रीति सुनत भक्त अपसहन करत सब ।
जप-जप जिपनि बिचार सार भामत मम-मन तब ॥
छिन छिन लोलुप[7] चित्त समुझि छाँड़त तातें शठ ।
करत न संत समाज जिते अभिमानी कमठ ॥१०॥

हितहरिवंश प्रसाद मम नित सेवन विश्राम ।
चित निषेध विधि सुधि नहीं वित्तु[8] संचित निधि-नाम[9] ॥
वित्तु संचित निधि नाम काम सुमिरन बासरतनु[10] ।
याम घटी[11] न बिलम्ब याम धृत[12] करत निकट जनु[13] ॥
धाम-नय-प्रारम्भ[14] दाम[15] दृढ़ प्रेम ग्रथित नित ।
ता मत[16] रत[17] सुखरासि काम-हग[18] नवकिशोर[19] हित ॥११

श्रीराधा आनन कमल हरि-अलि[20] नित सेवत[21] ।
नव-नव रति हरिवंशहित वृन्दाविपिन बसंत ॥

---

१ निर्मल चरित्र २ कहा ३ कर्म में श्रद्धा रखने वाले धर्मिष्ठ, ४ निर्दय, ५ महापापात्मा, ६ धुनते हैं ७ विषय का लोभी ८ धन ९ नाम रूपी संपत्ति १० दास्य भक्ति, ११ घड़ी-पहर १२ मनोभाव से धारण १३ माना, १४ धन १५ रस्सी, १६ सिद्धान्त १७ सम हृदय १८ श्रीराधा, १९ श्रीश्यामसुन्दर, २० भ्रमर, २१ पान करते हैं ।

वृन्दाविपिन बसत परस्पर बाहुदंड धरि।
चलत चरन गति मत्त करिनि-गजराज[1] गव भरि॥
कुञ्ज भवन नित केलि करत मद-नवल अगाधा।
नाना काम प्रसंग करत मिलि हरि श्रीराधा॥१२॥

मुख बिहँसत हरिवंशहित रद[2] रसरासि प्रवीन।
सुख-सागर नागर-गुरु पुहुप-सैन[3] आसीन[4]॥
पुहुप-सैन आसीन कौन निजु प्रेम केलि-बस।
पीन[5] उरज बर परसि भौन[6] नवसुरत-रंग-रस॥
छीन[7] निरखि मद-मदन दीन पावन जु बिलसित दुख।
मीनकेतु[8] निञ्जित[9] सु लीन प्रिय निरखि बिहँस मुख॥१३॥

रस-सागर हरिवंशहित लसत सरित-बर[10] तीर।
लग जस बितान सु बिस्तरत बसन सु कुञ्ज-कुटीर॥
बसत जु कुञ्ज-कुटीर भीर[11] नवरंग[12] भामिनि[13] भर[14]।
चोरनोस गौरांग सरसघन तन पीताम्बर॥
धीर बहत बक्षिम-समीर[15] रस-केलि करत बस।
नीरज नयन[16] सु रचित धीर बर[17] सुरतरंग रस॥१४॥

---

१ हथिनी २ गर्व ३ फूलों की शय्या ४ विराजमान, ५ पुष्ट ६ भोग हुए ७ निरस ८ कामदेव ९ पराजित १० श्री यमुना ११ अत्यन्त वृद्धि १२ श्री श्यामसुंदर १३ श्रीराधा १४ प्रभावान १५ मलय पवन १६ कमलनयना का शय्या १७ शृंगार।

प्रिय विचित्र बन हरखि मम जिय जस बसु फुनस[1] ।
तिय सखनी सुनि सुष्ट[2] धुनि कियौ तहाँ गमन सुरस ॥
कियौ तहाँ गमन सुरस कस मिलि विलसत सबस ।
तन्त[3] रासमण्डल फुरत रस निर्त्त रंग-रस ॥
सतत सुर दुन्दुभि बजत बरसत सुमन लिय ।
मत केलि-ब्रत जनुकि[4] मत्त इभराट[5] करिनि प्रिय ॥१५॥

हरि विहरत बन जुगल जनु तड़ित[6] सुवपु[7] घन संग ।
कर किसलय-बस तन भल भरि अनुराग अभंग ॥
भरि अनुराग अभंग रंग अपने सचु पावत ।
अंग अंग सजि सुभट अंग[8] मनसिजहिं[9] लजावत ॥
थिरु[10] दृष्टि ललितादि तन्नु निरखत रभसि करि ।
मञ्जु[11] आदि रचि सिथिल सकल उच्छङ्ग[12] धरत हरि ॥

स्याम सुभग तन बिपिनधम धाम विचित्र बनाइ ।
तामहिं सज्जन जुगलजन कामकेलि सचु पाइ ॥
कामकेलि सचु पाइ दाइ-छल[13] प्रियहिं रिझावत ।
धाइ धरत उर अङ्कु भाइ[14] गन कोक लजावत ॥
चाय[15] चवग्गुन[16] चतुर राइ रसरति सप्रामहिं ।
छाइ सुजस जग प्रगट गाइ गुन जीवत स्यामहिं ॥१७॥

---

१ बजाते हैं २ अमल ३ तत्काल ४ मानो ५ गजराज, ६ बिजली जैसा ७ सुन्दर शरीर ८ युक्त ९ कामदेव को १० स्थिर, ११ मांग १२ गोपी, १३ प्रेम के दाय पन, १४ भाव १५ चाव १६ चौगुना ।

सरिता-तट सुरद्रुम निकट प्रलि ता सुमन सुवास।
ललितादिक रसननि[1] विवस चलि सा कुञ्ज निवास॥
चलि ता कुञ्ज निवास प्रास सब हित मग परसत[2]।
रासस्थल उत्तम विलास सचि[3]मिलि मन हरसत[4]॥
तासु वचन सुनि चित हुलास, विरहज[5]दुख गलिता[6]।
वासन्तन फुल जुयति मास माधव सुख-सरिता॥१८॥

परसत[7]पुलिन सुलिन[8]गिरा करपत[9] चित सुर चोर।
हरषत हित नित नवल रस बरसत जुगलकिशोर॥
बरसत जुगल किशोर जोर[10] नवकुञ्ज सुरत रन।
मोर चन्द्र चय[11]चलत चोर फव[12]शिथिल सुभगतन[13]
घोर बिरा ललितादि कोर रन्ध्रनि निजु निरखत।
थोर प्रीति प्रस्तर न, मोर दंपति छवि परसत॥१९॥

ऋतु बसन्त बन फल सुमन, विन प्रसन्न नवकुञ्ज।
हित-दंपति रति कुहास मति, चितु[14] सचित सुख-पुञ्ज॥
चितु सचित सुख-पुञ्ज, गुञ्ज मधुकर सुनाद धुनि।
रञ्ज मृदङ्ग, उपङ्ग, घुङ्ग, डफ, झंझि ताल सुनि॥
मञ्जु जुयति रस-गान सुद्ध[15] इय राग तहां विर्यम्बु।
भुञ्जन[16]रास विलास, पुञ्ज नव सचि बसन्त ऋतु॥२०॥

---

१ मान्यता स २ प्रशंसा करना है ३ रचना करते ४ प्रगट होते हैं ५ विरह से उत्पन्न ६ दूर हो गया ७ परमात्मा ८ नवीन ९ गाता है १० प्रधान सहित ११ समूह १२ केश, १३ धाराधर १४ मन १५ मधुर गमान १६ उपभोग करता है।

कहत-कहत न कह्यो परै रहस जु मनहिं बिचारि ।
सहत-सहत बाढ़ै भगति गृह-तन गुरु-हित गारि[1] ॥
गृह-तन गुरु-हित गारि हारि अपनो करि मानस ।
चार वेद सुस्मृति जु चार क्रम कर्म न जानत ॥
डारि अविद्या करि विचार चित हित हरिवंशहि ।
नारि-रसिक[2]हृद[3]बन बिहार महिमा न पर कहि॥२१॥

सेवक श्रीहरिवंश के जग भ्राजत[4] गुन गाइ ।
निशि दिन श्रीहरिवंशहित हरषि चरण चित लाइ ॥
हरषि चरण चित लाइ जपत हरिवंश गिरा-जस ।
मनसि-वचसि चित लाइ जपत हरिवंश-नाम-जस ॥
श्रीहरिवंश प्रताप-नाम नौका निजु सेवक ।
भवसागर सुख तरत निकट हरिवंशजु सेवक ॥२२॥

इति श्रीहित भक्त भजन प्रकरण ॥१०॥

❀ अथ श्रीहित-ध्यान प्रकरण ❀

(गाहा छन्द)

व्रजपति हरिवंशचन्द्र नामोच्चार-वर्धित सदा
सुबुद्धि रसिक-अनन्य प्रधान सतु साधु
मण्डली महनो जयति ।

जय-जय श्रीहरिवंश हित प्रथम प्रणउँ सिर नाइ ।
परम रसद, निर्विघ्न ह्वै, जसे कवित सिराइ[5] ।

---

१ गलाफर, २ श्रीश्यामा-श्याम ३ श्री यमुना हृद, ४ शोभित ५ परिपूर्ण हो ।

सुकवित्त सुछन्द गनिज्जै[1] समय-प्रबंध-बन[2]।
सुकवि विचित्र भनिज्ज[3] हरिजस लीन मन ॥
श्रोता सोइ परम सुजान सुनत चित रति कर।
सोइ सेवक रसिक अनन्य विमल जस विस्तरै ॥

सुजस सुनत, बरनत सुख पायो।
कीर-भृङ्ग[4] नारद शुक गायो ॥
श्रीवृन्दावन सब सुखदानी।
रतन-जटित वर भूमि रमानी[5] ॥
वर भूमि रमानि सुखद द्रुम-वल्ली
प्रफुलित फलित विविध वरन[6]।
नित सरद-बसंत मत्त मधुकर-कुल
बहु पतत्रि[7] नादहि करन।
नाना द्रुम-पुञ्ज मञ्जु वर-बीथी
घन विहार राधारमन
तहाँ सतत रहत स्याम-स्यामा संग
श्रीहरिवंश चरण शरण ॥
।
रहत सदा सखि सङ्ग, रास रंग रस रसाल उल्ला
लीला,ललित रसाल, सम सुर-ताल,बरषत सुख-

---

१ गिनना चाहिये २ श्रीवृन्दावन का यह वर्णन
३ कहना चाहिए, ४. वाराहपुराण में कोर
भृङ्ग ने भी वृन्दावन का यश-गान किया है
५. सुन्दर रंग के, ७. पक्षी, ८. मदजन्य उन्माद ।

अतुलित रस बरषत सदा सुखनिधान वनवासि[1]।
अद्भुत महिमा महि[2] प्रगट सुन्दरता की रासि ॥
सुन्दरता की रासि कनक द्युति देह रुचि[3]।
वारिज-वदन[4] प्रसन्न, हाँसि मृदु रंग सुचि ॥
भ्रुव[5], सुदृढु ललाट-पट, सुन्दर करनं[6]।
नैन कृपा अवलोकि प्रणत[7] आरति[8] हरनं ॥

सुन्दर ग्रीव, उरसि वनमाल।
चारु अंस वर, बाहु बिसाल ॥
उदर सुनाभि, चारु कटि देश।
चारु जानु, शुभ चरण सुवेश[9] ॥
शुभ चरण सुवेश मत्त गज वर गति,
पर उपकार देह धरन।
निज गुण विस्तार अपार अवनि पर,
बानी विशद सुविस्तरन ॥
करुणामय परम पुनीत कृपानिधि,
रसिक अनन्य सभा भरन[10]।
जै जग-उद्योत[11] व्यासकुल-दीपक,
श्रीहरिवंश चरण शरणं ॥२॥

---

१ श्री वृन्दावन के वासी २ पृथ्वी ३ कांति, ४ मुखकमल ५ सुन्दर भ्रकुटि ६ कान ७ शरणागत, ८ कष्ट ९ सुन्दर, १० सभा के भूषण, ११ जग में प्रकाश फैलाने वाले।

सारासार विवेकी, प्रेमपुञ्ज अद्भुत अनुराग ।
हरिरस रस मधु मत्त, सर्व त्यागत्या[1] दुस्त्यज[2] कुल-क्रम ॥
कर्म छाँड़ि कर्मठ भजे[3], ज्ञानी ज्ञान विहाय[4] ।
व्रतधारी व्रत त्यागि भजे श्रवनादिक[5] चितलाय ॥
श्रवनादिक चित लाइ, जोग, जप-तप तजे ।
औरौ कर्म सकाम सकल तजि सब भजे ।
साधन विविध प्रयास[6] ते सकल विहावहीं ।
श्रवन, कथन, सुमिरन, सेवन चित लावहीं ॥
अर्चन, वन्दन अरु वात्सल्य ।
सख्य और आत्मा-समर्पन ॥
ये नव-लक्षन भक्ति बड़ाई ।
तब तिन प्रेमलक्षणा पाई ॥
पाई रस भक्ति गूढ़[7] जुग-जुग जग,
दुर्लभ भव[8] इन्द्रादि विधि[9] ।
आगम अरु निगम पुराण अगोचर[10],
सहज माधुरी रूप निधि ॥
अनभय[11] आनन्दकन्द निजु सम्पत्ति,
गुप्त सुरीति प्रगट करन ।

---

१ छोड़कर, २ कठिनता से छूटने वाले, ३ भजन करने लगे ४ छोड़कर, ५ नवधा भक्ति ६ परिश्रम ७ गुप्त ८ शिवजी, ९ ब्रह्मा, १० परे ११ निर्भय करने वाले।

जय जग-उद्योत व्यासकुल-दीपक,
श्रीहरिवंश चरण-शरण ॥३॥
प्रगटित प्रेम प्रकास सकलवंसु शिखरी-कुल[1] दिर्त।
गत[2] कलि तिमिर-समूह[3], निर्मल अकलंक उदित जग चन्द्र
विशद चन्द्र तारा-तनय शीतल किरण प्रकासि।
अमृत सींचत मम हृदय सुखमय आनँद रासि।
सुखमय आनँद रासि सकल जन शोक हर।
समुझि जे आये चरन ते डरत न काल डर॥
दियौ दान तिन अभय द्वंद्व-दुख सब घटे।
नित नित नव-नव प्रेम कर्म-बन्धन कटे॥
कटे कर्म-बन्धन संसारी।
सुख-सागर पूरित अति भारी॥
विधि निषेध शृङ्खला[4] छुड़ावै।
निज आलय[5] बन आनि बसावै॥
आलय बन बसत संग पारस के,
आयस[6] कनक समान भय[7]।
माँगौ मन मनसि दासि अपनौ करि,
पूरण-काम सदा हृदय॥
सेवक गुन-नाम आस धरि बरनै,
जय निजु दासि कृपा करन।

---

१ दीवाम किया, २ दूर हुए, ३ अन्धकार समूह, ४ बंधन ५ घर, ६ लोहा, ७ होगया।

जय जग-उद्योत व्यासकुल-दीपक,
श्रीहरिवंश चरण-शरण ॥४॥

॥ छप्पय ॥

प्रकृत-गुनत गुन-नाम सदा सत-संगति पावै।
पर याद रस रीति विमल बानी गुन गावै॥
प्रेम लक्षणा भक्ति सदा आनँद हितकारी।
श्रीराधा-युग चरन प्रीति उपजै अति भारी।
निज महल-टहल नवकुञ्ज में नित सेवक सेवा करन।
निशदिन समीप सतत रहे सु श्रीहरिवंश चरण शरण॥५

इति श्रीहित ध्यान प्रकरण॥११॥

॥ अथ श्रीहित-मंगल-गान प्रकरण ॥

(राग सूहो बिलावल)

जै जै श्रीहरिवंश व्यासकुल-मण्डना[1]।
रसिक अनन्यनि मुख्य-गुरु जन भय खण्डना[2]॥
श्रीवृन्दावन बास रास रस भूमि जहाँ।
क्रीड़त श्यामा श्याम पुलिन मञ्जुल तहाँ॥
पुलिन मञ्जुल परम पावन त्रिविध तहाँ मारुत[3] बहै।
कुञ्ज भवन विचित्र शोभा मदन नित सेवत रहै॥

---

१ भूषित करने वाले २ नष्ट करने वाले ३ पवन।

तहाँ सतत व्यासनवन रहत कसुष विहडना[1] ।
जै जै श्रीहरिवंश व्यासकुल मण्डना ॥१॥
जै-जै श्रीहरिवंशचन्द्र उदित सदा ।
द्विजकुल-कुमुद प्रकाश विपुल सुख-सम्पदा ॥
पर-उपकार विचारि सुमति जग विस्तरी ।
करुणासिन्धु कृपाल काल भय सब हरी ॥

हरी सब कलिकाल की भय कृपारूप जु वपु[2] धरघो ।
करत जे अनसहन[3] निदक तिनहुं पै अनुग्रह[4] करघो ॥
निरभिमान, निर्वैर, निरुपम, निष्कलंक जु सर्वदा ।
जै-जै श्रीहरिवंशचन्द्र उदित सदा ॥२॥
जै-जै श्रीहरिवंश प्रशंसित सब दुनी[5] ।
सारासार विवेकित[6] कोविद[7] बहुगुनी[8] ॥
गुप्त रीति आचरण[9] प्रगट सब जग दिये ।
ज्ञान धर्म-व्रत-कर्म भक्ति-किंकर[10] किये ॥
भक्ति-हित जे शरण आये द्वन्द-दोष[11] जु सब घटे ।
कमल-कर जिन अभय दीने कर्म-बन्धन सब कटे ।
परम सुखद सुशील सुन्दर पाहि[12] स्वामिनि मम धनी ।
जै-जै श्रीहरिवंश प्रशंसित सब दुनी ॥३॥

---

१ पापों को नष्ट करने वाला २ शरीर, ३ ईर्ष्या ४ कृपा, ५ संसार ६ विवेक कर लिया अपना करण लिया लिये ७ चतुर ८ अनेक गुणों वाला, ९ क्रिया, १० दास, ११ सुख-दुख आदि १२ रक्षा करें ।

जै जै श्रीहरिवंश नाम-गुण गाइ है ।
प्रेम-लक्षणा भक्ति दृढ़ करि पाइ है ॥
अरु वाढ़ै रस रीति प्रीति चित ना टरै ।
जीति विषम-संसार कीरति जग विस्तरै ॥
विस्तरै सब जग विमल कीरति साधु-संगति ना टरै ।
वास वृन्दाविपिन पावै श्रीराधिका जू कृपा करै ।
चतुर जुगल किशोर सेवक दिन प्रसादहिं[1] पाइ है ।
जै-जै श्रीहरिवंश नाम-गुण गाइ है ॥४॥

इति श्रीहित मंगल प्रकरण ॥१३॥

❀ अथ श्रीहित पाके धर्मी ❀

(सवैया)

साधन विविध सकाम मति,
सब स्वारथ समल सवै जु प्रतीति ।
ज्ञान ध्यान व्रत कर्म जिते सब,
काहू में नहि मोहि प्रतीति ॥
रसिक अनन्य निसान[2] बजायो,
एक श्याम-श्यामा पद प्रीति ।
श्रीहरिवंश चरण निज सेवक,
विचल[3] नहीं छांड़ि रस-रीति॥१॥

---

१ कृपा का, २ नगाड़ा ३ डिग नहीं ।

(किरीट)

श्रीहरिवंश धरम्म प्रगट्ट, निपट्ट-
क[1] ताको उपमा कौं नाहिन ।
साधन ताको सब नव लक्षन[2],
सच्छिन सेग विचारत जाहि न ॥
जो रस-रीति सदा अविरुद्ध[3],
प्रसिद्ध विरुद्ध तजत्त क्यों ताहि न ।
जोपै धरम्मी कहावत हो,
तौ धरम्मी धरम्म समुझत काहि न ॥२॥
जोपै धरम्मिन सों नहि प्रीति,
प्रतीति प्रमानस आन[4] न मानियो[5] ।
एकहि रीति सबनि सों हेत,
समीति[6] समेत[7]समान न मानियो ॥
बात सों बात मिलै न प्रमान,
प्रकृत्ति- विरुद्ध जुगत्ति[8] को ठानियो ।
श्रीहरिवंश के नाम न प्रेम,
धरम्मी धरम्म समुझ्यो क्यों जानियो॥३॥
श्रीहरिवंश वचन्न प्रमानि कै,
साकत[9] संग सब जु विसारत[10] ।

---

१ पूर्ण रूप से, २ नवलक्षणा भक्ति, ३ निर्विरोध, ४ दूसरा ५ माना ६ प्रीति ७ सहित ८ युक्ति ९ शाक्ति उपासक, १० भुला देते हैं ।

संसृति[1] सीमा सरसाइ[2] कै पायौ जु,
मानुषदेह वृथा कत डारत[3] ॥
क्यों न करत धरम्मिन कौ संग,
जानि-बूझि कत आन[4] विचारत ।
जो पै धरम्मी मरम्मी ह्वै तौ,
धरम्मिन सौं कत अंतर पारत ॥४॥

(दूसरा पद)

जो धरम्मी धरम्म कह्यौ जु करौ,
सो धरम्मिन संग बड़ो सबतें ।
अपुनर्भव[5] स्वर्ग जो नाहिं बराबर,
सो सुख-मरम[6] कहौ कबतें ॥
कहे काहे प्रमान बचन बिसारत,
प्रेमी अनन्य भये जबतें ।
सब श्रीहरिवंश कह्यौ जु कृपा करि,
सांचो प्रबोध[7] सुन्यो अबतें ॥५॥

(तीसरा पद)

श्रीहरिवंश जु रह्यौ स्याम स्यामा-
पद-कमल-संगि[8] सिर नायौ ॥
ते न बचन मानत गुरुद्रोही,
निसि दिन करत आपनो भायौ ॥

---

१ संसार २ पनिसा से ३ नष्ट करते हो ४ दूसरो मत ५ मुक्ति ६ सौभाग्य सुख ७ ज्ञान ८ रसिक उपासक

इत ब्यौहार न उत परमारथ,
बीच ही बीच जु जनम गमायो ।
जो धरम्मिन सौं प्रीति करत नहिं,
कहा भयो धर्मी जु कहायो ॥६॥

(छप्पय छन्द)

करौ श्रीहरिवंश उपासक संग जु,
प्रीति-तरङ्ग सुरङ्ग[1] बह्यौ ।
करौ श्री हरिवंश की रीति सबै,
कुल-लोक विरुद्ध जु जाइ सह्यौ ।
करौ श्रीहरिवंश के नाम सौं प्रीति,
जा नाम-प्रताप धरम्म लह्यौ ।
जु धरम्मी धरम्म स्वरूप कह्यौ,
बिसरौ जिन श्रीहरिवंश कह्यौ ॥७॥

(किरीट)

श्रीहरिवंश धरम्म जे जानत,
प्रीति की ग्रंथि[2] तहाँ मिलि खोलत ।
श्रीहरिवंश धरम्मिन माँझ[3],
धरम्मी सुहात[4] धरम्म सैं बोलत ॥
श्रीहरिवंश-धरम्मि कृपा करैं,
तासु कृपा रस भावक डोलत ।

---

१ अनुराग पूर्ण, २ गाँठ, ३ मध्य में, ४ शोभित होते हैं ।

श्रीहरिवंश की वानी-समुद्र की,
मीन भयौ जु अगाध कलोलत[1] ॥८॥

(छन्द दुमिला)

व्रत संयम कर्म सु धर्म जिते,
सब शुद्ध-विरुद्ध पिछानत[2] हैं।
अपनी अपनी करतूत[3] करैं,
रस मादक सकै न आनत हैं॥
हरिवंश-गिरा रसरीति प्रसिद्ध,
प्रतीति प्रगट्ट प्रमानत हैं।
बलि जाउँ अपन्ने धरम्मिन की,
जे धरम्मी धरम्महि जानत हैं॥९॥

(मदिरा छन्द)

श्रीहरिवंश धरम्म सुनत जु,
छाती सिरात धरम्मिन की।
धरम्म सुनत प्रसन्न ह्वै बोलत,
बोलनि मीठी धरम्मिन की॥
धरम्म सुनत पुलकित रोमनि,
हौं बलि प्रेमी धरम्मिन की।
सु धरम्म सुनाय धरम्महि जाँचत,
चाहौं कृपा जु धरम्मिन की॥१०॥

---

१ क्रीड़ा करता है २ पहिचानत हैं ३ किया, ४ डर।

छप्पय

श्रीहरिवंश प्रसिद्ध धर्म समुझैं न अलप-तप[1]।
समुझौ श्रीहरिवंश-कृपा सेयहु धर्मिन-धप ॥
धर्मी बिनु नहिं धर्म, नाहिं बिनु धर्म जु धर्मी।
श्री हरिवंश-प्रताप मरम जानहिं जे मर्मी[2] ॥
श्री हरिवंश नाम धर्मी जु रसि तिन शरण्य सतत रहै।
सेवक निशिदिन धर्मिनि मिलि श्रीहरिवंश सुजस कहै॥ ११

इति श्रीहित पाके धर्मी प्रकरण ॥१३॥

॥ अथ काचे धर्मी ॥

(सवैया किरीट)

श्री हरिवंश धरम्मिन के सग,
आगे ही आगे जु रीति बखानत[3]।
आपुने जानि कहैं जु मिले मन,
उत्तर फेरि चवग्गुन[4] ठानत ॥
बैठत जाय बिधर्मिन में तब,
बात धरम्म की एकौ न आनत।
काचे धरम्मिन के सुनौ ढव,
धरम्मी धरम्म-मरम्म[5] न जानत॥१

---

१ कम पुण्य वाला २ रहस्य जानने वाला, ३ वर्णन करते हैं ४ चौगुना ५, धर्म का मर्म।

(समान)

बातनि झूठनि ग्यान कहैं मुख,
बेत प्रसाद अनूठोही[1] छाँड़त ।
ग्रंथ प्रमानि कै जो समुझाइये,
सो तब क्रोध-रारि[2] फिर मांड़त[3]॥
सच्चिदन छाँड़ि प्रेम की बातहि,
फेरि जाति-कुल रीति प्रमानत ।
काचे धरम्मिन के सुनो छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥२॥

(विराट)

धरम्मिन माँझ प्रसन्न ह्वै बैठत,
जाइ विधर्मिन माँझ उपासत[4] ।
तासच लागि जहाँ जैसे तहाँ तसे,
सोई-सोई तिन मध्य प्रकासत[5] ॥
भावहि[6] होत कुम्हार को कूकर[7],
तासो हुव गुरु-रीति न मानत ।
काचे धरम्मिन के सुनो छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥३॥

---

१ बिना ग्रहण किये ही। २ झगड़ा। ३ प्रारम्भ कर देते हैं। ४ उसी तरह। ५ उपासना करते हैं। ६ निरर्थक हैं? ७ कृपा हो। ८ कूमा।

नाना तरङ्ग करत छिन ही छिन,
रोवत रेंट म लार सम्हारत।
तच्छिन प्रेम जमाइ कहत जु,
मेरीसो रीति काहे अनुसारत[1] ॥
तच्छिन झगरि रिसाइ कहत जु,
मेरी बराबर औरनि मानत।
काचे धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥४॥
मेरी सौ प्रेम, मेरी सौ कीरतन,
मेरी सो रीति काहे अनुसारत।
मेरी सौ गाम, मेरी सौ बजाइबौ,
मेरी सौ कृत्य सब जु बिसारत[2] ॥
छाँड़ि मर्जाद गुरुन सौं बोलत,
कञ्चन-काँच बराबर मानत।
काचे धरम्मिन के सुनौं छन्द।
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥५॥
(समान)
वैसे जु वैसे भले जु भले तुम,
आपनो और परायो न जानत।
हौं जु सदा रस रीति बखानत,
मेरी बराबर ठागनि[3] मानत ॥

१ अनुकरण करते हो, २ भुला देते हो, ३ ठगने वालों को।

कैसे-धौं पाऊँ तिहारे हूदै पौं,
ज्ञान द्वार[1] के मोहि न जानत ।
याते धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥६॥

और तरग सुनो अति मीठी,
मखीन के नाम परस्पर बोलत ।
तांण्डन केन गहत मुहि[2] हांनि,
साक्त-गुढ[3] बचावत डोलत ॥
तांण्डन बोलें तू प्रेत, तू राक्षस,
फेरि परस्पर जाति प्रमानत ।
याते धरम्मिनि के सुनो छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥७॥

आयो धरम्म देखो रस-रीति जु,
निष्ठुर बोलत बदन प्रकासित ।
ऐसे न यंसे रहे मंभरदव[4],
पाहिलियों जु करी निरभासित[5]॥
दुइ ई फेरि जसे वे तसे हम,
धारे ते[6] भाये मयासिन मामत ।

---

१ धन्य मंदनाथ रे २ पगा मारकर ३ वाम मार्गी
४ अपराध ८ ५ पराजित ६ दम्पन ग ।

काहे धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥८॥
एक रिसाने-से रूखे-से बोलत,
पूछत रीति भभूकत धावत।
एक रँगमगे बोलत चालत,
मामिलेहू[1] अपुरे[2] जु जनावत॥
एक बचन क[3] साँचो-साँचो कहैं,
चित सचाई को एकौ न आनत।
काहे धरम्मिनि के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥९॥
एक धरम्म समुझें बिनाउब,
गुसाँई के ह्वै[4] जु जगत पुजावत।
मूल न मंत्र टटोरा की रीति[5],
धरम्मिन पूछत बचन दुरावत[6]॥
एक मुलम्मा[7] सो देत उघारि,
जु वल्लभ-सौं-वल्लभ परमानत[8]।
काहे धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥१०॥

---

१ अपनी बड़ाई २ रूक, ३ मुख से ४ गुसाँई जू के शिष्य बनकर, ५ अंधा व्यक्ति जिस प्रकार टटोल कर वस्तु का पता लगाना चाहता है, वह रीति, ६ छिपाते हैं ७ झोल ८ लौकिकवल्लभों प्रेमीजनों की प्रीति से श्रीराधावल्लभके प्रेम को प्रमाणित करते हैं।

एक गुरुन सों बाद[1] करत,
जु पंडित-मानी ह्वै सौंमहि ऐंठत।
एक दरब्य के जोर मरब्बट[2],
आसन चाँपि सभा मधि बैठत ॥
एक जु फेरि रीति उपदेशत,
एक बड़े ह्वै न बात प्रमानत।
काचे धरम्मिन के सुनौ छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥११॥
एक धरम्मी अनय कहाय,
बड़ाई कौं न्यारी पै बाजो-सौ मांडत[3]।
और के पाप सों पाप कहत,
दरब्य के काज धरम्महि छांडत ॥
बोलत बोल बटाऊ[4] से लागत,
ह्वै गुरुमानी[5] न बात प्रमानत।
काचे धरम्मिन के सुनौ छन्द
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥१२॥

(रोला)

परखे[6] सुनहु सुजान जहाँ कछु और कचाई[7]।
नरक परे परसाय, नतरु[8] ता कहँ कुरचाई ॥

---

१ विवाद २ जबरदस्ती ३ मान प्रतिष्ट ४ बहुत बड़ो प्राप्त करन कों वस्तु समझत है ५ दर्शकित ६. गुरुपने का अभिमान रखने वाले ७ परखा करमों है ८. दर्शकित्ता ९. सच्चाई।

काचे धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥८॥
एक रिसाने-से रूखे-से बोलत,
पूछत रीति मभूकत धावत।
एक रँगमगे बोलत बातत,
मापसेहू[1] बपुरे[2] जु जनावत॥
एक बदन क[3] साँचो-साँचो कहै,
चित सचाई को एकौ न जानत।
काचे धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥९॥
एक धरम्म समुझके बिनाऽव,
गुसाँई पै ह्वै[4] जु जगत पुजावत।
मूस न मत्र टटोरा की रीति[5],
धरम्मिन पूछत बचन दुरावत[6]॥
एक मुलम्मा[7] सो बेठ बघारि,
जु वल्लभ-सों-वल्लभ परमानत[8]।
काचे धरम्मिन के सुनौं छन्द,
धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत॥१०॥

---

१ अपनी बड़ाई २ रंक ३ मुख से, ४ गुसाँई जू के शिष्य बनकर, ५ अंधा व्यक्ति जिस प्रकार टटोल कर वस्तु का पता लगाना चाहता है, वह रीति, ६ छिपाना है ७ मोम ८ सौकिक्यलमें प्रेमीजनों-को प्रीति से श्रीराधावल्लभके प्रेम को प्रमाणित करते हैं।

एक गुरुन सों वाद[1] करत,
　　　　वु पंडित-मानी ह्वै जोमहि ऐंठत ।
एक दरब्य के जोर जबर्दट[2],
　　　　आसन चाँपि सभा मधि बैठत ॥
एक जु फेरि रीति उपदेशत,
　　　　एक बड़े ह्वै न बात प्रमानत ।
काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,
　　　　धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत ॥११॥
एक धरम्मी अनन्य कहाय,
　　　　बड़ाई[3] कों न्यारो ये बाखो-सो माँडत[4] ।
और के बाप सों बाप कहत,
　　　　दरब्य के काज धरम्महि छाँड़त ॥
बोलत बोल चटाक[5] से लागत,
　　　　ह्वै गुरुमानी[6] न बात प्रमानत ।
काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,
　　　　धरम्मी धरम्म मरम्म न जानत ॥१२॥

(दोहा)

परखे[7] सुनहु सुमान जहाँ कछु और कचाई[8] ।
भक्त कहे परसाद, नतरु[9] ता करै बुराई ॥

---

१ विवाद २ जबदस्ती, ३ मान प्रतिष्ठा ४ बहुत बड़ी प्राप्त करने की वस्तु समझना है ५ अपरिचित ६. गुरुजन का अभिमान रखने वाला ७ परीक्षा करनी है ८. अपरिपक्वता, ९. अन्यथा ।

विये सराहैं[1] सुख रहैं सुख में बिन रासी ।
सेवे कौं सु सजाति, सरस कौं होत विजाती[2]॥१३॥

(किरीट)

लै उपदेश कहाइ अनन्य,
अ हाइ अनर्पित[3] जाइ गटक्कत[4] ।
नास करैं विषयीन[5] के आगे,
नु देखे में जोरत हाथ लटक्कत[6] ॥
केतिक आयु, कितेक-सो जीवन,
काहे विनासत[7] काज हटक्कत[8] ।
श्रीहरिवंश धरम्मिन छाँड़ि,
घर घर काहे फिरत भटक्कत[9]॥१४॥

(मालती)

साकत संग अगिन-लपट्ट[10],
लपट्ट-जरत[11] क्यौं संगत कीज ।
साधु सुबुद्धि समान[12] सु सतनि,
जानि कै शीतल संगति कीज ॥
एक नु बाचे प्रकृति विरुद्ध[13],
प्रकृति विरुद्ध करैं तौ का कीज ।

---

१ प्रशंसा करते हैं, २ विधर्मी ३ प्रभु को अर्पण किये बिना, ४ गटकते हैं ५ संसार में फँसे लोग, ६ दीनता पूर्वक, ७ विनाश करते हैं ८ अपने काज को बिगाड़ते हैं, ९ भटकते फिरते हो १० अग्नि की ज्वाला ११ लपटों में जलती हुई १२ समदृष्टि वाले १३ धर्म की प्रकृति से विरुद्ध आचरण करने वाले ।

जे आगि के दाझे¹ गये भजि पानीमें,
पानी में आगि लग तौ का कीजै ॥१५॥

प्रीति भग² बरमत रस रीतिहि,
श्रीहरिवंश वचन विसरायहु³।
आप आपनी ठौर जहां तहाँ,
करि विरुद्ध सब प निदरायहु⁴॥
एक ससार बुष्ट की सगति,
ताहू में तुम पुष्ट करायहु।
विनती करहुं सकल धर्मिन सौं,
धरमी ह्वै जिन नाम धरावहु⁵॥१६॥

(कवित्त-दण्डक)

स्वारथ सकल तजि, गुरु-चरणन भजि,
गुण-नाम मुनि कथि,⁶ सतन सौं सग करि।
काल-व्याल⁷ मुख परयो, कफ वात पित्त भरयो
भ्रम्यो कत⁸ अनन्य कहे की जिय लाज धरि॥
सेवक निकट रस रीति प्रीति मन धरि-
हितहरिवश, कुल-कानि सब परिहरि⁹।
यावे रसिकनि सौं विनती करत ऐसी,
गोविंद बुहाई भाई जो न सेयो श्यामा हरि॥१

१ जले हुए २ प्रेम शून्य, ३ भुलाते हो ४ निरादर कराते हैं ५ धर्मनामी न कहलाओ ६ कथन कर ७ काल क्यों गई ८ भ्रम में क्यों पड़ रहा है ९ छोड़ दे।

॥ छप्पय ॥

प्रगटित श्रीहरिवंश सूर[1] दुन्दुभि बजाइ दल।
मदन मोह मद मलित[2], निदरि[3] निदरित[4] भ्रम-दल[5]॥
भ्रम[6] भग्य[7] भय भीत[8], गय्य पुञ्जन रज[9] खण्डन।
लोभ-क्रोध-कलि-कपट, प्रबल पाखण्ड विहृण्डन[10]॥
तृष्णा-प्रपंच-मत्सर विसन[11], सब दण्ड[12] निबल करे।
शुभ अशुभ दुर्ग विध्वंसिबल, तब शांति-अति जग सञ्चरे॥१८

इति काचे धर्मी प्रकरण ॥१४॥

॥ अथ अलभ्य लाभ प्रकरण ॥

(नाराच छन्द)

हरिवंश नाम है जहाँ तहाँ-तहाँ उदारता,
सकामता तहाँ नहीं कृपालुता विशेखिये[13]।
हरिवंश नाम लीन जे अजातशत्रु[14] ते सदा,
प्रपंच दम्भ आदि वे तहाँ कछू न पेखिये॥
हरिवंश नाम जो कहै अनन्त सुयश से लहै,
दुराप[15] प्रेम की दशा तहाँ प्रतक्ष देखिये।
सोई अनन्य साधु सो अगत्य पूजिये सदा,
सु धन्य-धन्य विश्व में जनम्म सत्य लेखिये॥१॥

---

१ शूर वीर २ मस डाले ३ निरादर करके ४ पीस डाले, ५ पाखण्ड के समूह, ६ भ्रम, ७ भाग गया, ८ डरकर, ९ रजोगुण, १० नष्ट कर दिये, ११ दुर्व्यसन, १२ सेना, १३ अधिक रहती है १४ जिसका कोई शत्रु न हो, १५ दुर्लभ।

श्रीव्यासनन्द नाम को अलभ्य लाभ जानिये ।
हरिवंशचन्द्र जो कही, सुचित्त ह्वै सबै सही,
वचन चारु माधुरी सु प्रेम सों पिछानिये ॥
सुन प्रपन्न[1] जे भये, अभक्त[2] सब के गये,
तिन्हैं मिले प्रसन्न ह्वै न जाति-भेद मानिये ।
सुभाग-लाग[3] पाइ हो, प्रशंसि कंठ लाइ हो,
सिराय नम वेणि कँ, अभेद बुद्धि आनिये ॥
कृपालु ह्वै सु भाखि[4] हैं, परम्म पुष्ट राखि हैं,
श्रीव्यासनन्द नाम को अलभ्य लाभ जानिये॥२॥

हरिवंश नाम सबसार छाँड़ि लेत बहुत भार,
राज विभौ[5] वेदि क विष विषम्म[6] भोगहीं ।
जोव[7] होत साधु संग आनि करत प्रीतिभंग,
मान-काज[8] राजसीन[9] के जु मुक्ख[10] जोवहीं[11] ॥
जहाँ-तहाँ[12] भ्रम लात, लसो कहत आप गात,
सकल पोस इन्द्र मास रात सय सोवहीं ।
प्रसिद्ध व्यासनन्द-नाम जानि-बूझि छोड़ हीं,
प्रमाद ते लिये बिना जनम्म बाद[13] खोवहीं॥३

---

१ शरणागत २ अभक्त ३ भाग्यवान ४ रस की रीति का वर्णन करना ५ धन-वैभव ६ इन्द्रियों के दुष्ट विषय ७. यदि ८ सम्मान प्राप्त करने के लिए ९ धनी लोगों के १० मुख ११ देखते हैं १२ इधर-उधर का १३ व्यर्थ ही ।

हरिवंश नाम हीन, छीन-दीन[1] देखिये सदा,
कहा भयो बहुत जु पुरान वेद पढ़हीं[2]।
कहा भयो भले प्रवीन, जानि मानिये जगत,
लोकरीझ लोभ[3] कों बनाइ बात गढ़हीं[4]॥
कहा भयो किये करम्म जग्य दान देत देत,
फलनि पाइ उच्च-उच्च देवलोक चढ़हीं[5]।
परयौ प्रवाह काल के कदापि छूटि है नहीं,
श्रीव्याससुनन्दन नाम जो प्रतीति सो न रटहीं[6]॥४

इति श्री ससनन्यलाभ प्रकरण ॥१५॥

॥ अथ मान सिद्धान्त प्रकरण ॥

(दोहा)

वानी श्रीहरिवंश की, सुनहु रसिक चित लाइ।
जेहि विधि भयो अबोलनो[7],सो सब कहौं समुझाय॥१॥

श्रीहरिवंश जु कथि कही, सोइ[8] सुनाऊँ गाइ।
वानी श्रीहरिवंश की, नित मन रह्यौ समाइ॥२॥

श्रीहरिवंश अबोलनो, प्रगट प्रेम रस सार।
अपनो बुधि न कछु कहौं, सो वानी[9] उच्चार[10]॥३॥

---

१ दीन-हीन २ पढ़ते हैं, ३ शोभा ४ गढ़ते हैं, ५ चढ़ते हैं ६ रटता है, ७. निरट मान ८. वह ९ श्रीहरिवंश की वाणी में १० वर्णन किया गया है।

हितहरिवंश जु कौतुकहीं, रूपति रस समतूल[1]।
सहज समीप अबोलनी, करत जु आनंद मूल ॥४॥
काहे कौं डारति[2] भामिनी, हौं जु कहति इक बात।
नेकु बदन सन्मुख करौ, छिन-छिन कल्प सिरात[3] ॥५॥
वे चितवत सुख बदन बिधु[4], तू निज चरण निहारति।
वे मृदु चिबुक प्रलोवहीं[5], तू कर सौं कर टारति[6] ॥६॥
वचन अधीन सदा रहै, रूप समुद्र अगाध।
प्राणरवन सौं बत करत, बिनु आगस[7] अपराध ॥७॥
चित कृपा करि भामिनी, लीने कंठ लगाइ।
सुख सागर पूरित भये, देखत हियो सिराइ[8] ॥८॥
सेवक शरण सदा रहै, अनत नहीं विश्राम[9]।
वानी श्रीहरिवंश की, कै हरिवंशहि नाम ॥९॥

इति श्रीमानसिद्धान्त प्रकरण ॥१६॥

इति श्रीनागरीदासजी (सेवकजी) कृत
सेवक वाणी समाप्ता।

---

१ समान २ मानती नहीं हो ३ व्यतीत होते हैं, ४ मुख चन्द्र ५ सहलाते हैं ६ हटाती हो ७ अपराध ८ शीतल होता है ९ निश्चिन्तता नहीं।

॥ फलस्तुति ॥

(छप्पय)

जयति-जयति हरिवंश-नाम-रति सेवक बानी ।
परम प्रीति रस रीति रहसि कलि प्रगट बखानी ॥
प्रेम सपती धाम सुखद विश्राम धरम्मिन ।
भनत-गुनत गुन गूढ़ भक्त भ्रम भमत करम्मिन ॥
श्रीव्यासनन्द अरविंद चरण-मध तासु रंग-रस राचहीं ।
श्रीकृष्णदास हित हेत सों जे सेवक बानी बाचहीं ॥१॥

कै हरिवंशहि नाम धाम वृन्दावन बस गति ।
बाणी श्रीहरिवंश सार सच्यौ सेवक-मति ॥
पठन श्रवण जो करै प्रीति सों सेवक वाणी ।
भव निधि दुस्तर यदपि होय तिहि गोपद-पानी ॥
श्रीव्यासनन्द परसाद लहि युगल रहस दरसगु उर ।
भनि वृन्दावन हित रूप बलि सुख विलसंभावुक धामधुर

ग्रन्थ सिन्धु तें सोधि रत्न कलि माँहि बढ़ायौ ।
यह हित कृपा प्रसाद भमो भाजन भरि पायौ ॥
रसिक मनो सुर-सभा मानि तिनकों बरसायौ ।
यौ सेवक निजु गिरा मोहिनी बांटि पियायौ ॥
पठन श्रवण निशिदिन करै सम्पति सुधाम सुख लहै भलि
वाणी स्वरूप हरिवंश-सन भनिवृन्दावन हित रूप बलि

सकल ग्रन्थ विग्रह हुँहै पढ़ि सेवक वाणी ।
श्रीवृन्दावन वास होत पढ़ि सेवक वाणी ॥
व्यासनन्द-पद प्रीति होत पढ़ि सेवक वाणी ।
श्री राधावल्लभ मीत होत पढ़ि सेवक वाणी ॥
पढ़िय नित हित रंग सों सेवक वाणी प्रेम सनि ।
सेवक वाणी की कृपा सेवक वाणी कहँ मुकनि ॥८॥

॥ पद ॥

सेवक, सेवक वाणी बोलो ।
रूप रंग रस मद में छाके कुंजनि-कुंजनि डोलो ॥
जाके पढ़े सुने अरु गाये उपजत प्रेम अमोलो ।
रसिक मुकुन्द सुमिर हित चित में कपट कपाटनि खोलो ॥५॥

❀ इति ❀

जय-जय राधावल्लभ, गुरु हरिवंश,
रंगीली राधावल्लभ, हितहरिवंश।
छबीली राधावल्लभ, प्यारोहरिवंश,
रसीली राधावल्लभ,जीवन हरिवंश।
श्रीवृन्दावनरानीराधा वल्लभनृपति प्रसंश।
हित के बल जस रस उर धरिये,करिये श्रुति अवतंस ॥१
वंशीवट, यमुना तट, धीर समीर पुलिन सुखपुञ्ज।
विहरत रंग रँगीलो हित सों, मण्डल सेवाकुञ्ज ॥२॥
ललिता विशाखा चंपक चित्रा, तुङ्गविद्या रङ्गदेवी।
इन्दुलेखा सुदेवी सबही, सखी यूथ हित-सेवी ॥३॥
श्रीवनचंद्र, श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीगोपीनाथ, श्रीमोहन।
नाद बिंदु परिवार रंगीलो, हित सों नित छवि जोहन ॥४॥
नरवाहन, ध्रुवदास, व्यास श्रीसेवक, नागरिदास।
बीठल मोहन मंगल छबीले, हित-चरणन की आस॥५॥
हरीदास माहरमल गोविंद, जमल भुवन सुजान।
खरगसेन हरिवंशदास परमानंद के हित प्रान ॥६॥
गंगा, यमुना, करमठी, अरु भागमती ये बाई।
हित के चरण शरण ह्वै कें, इन दंपति-संपतिपाई॥७॥
दासचतुरभुज, कृष्ण स्वामी, अरु प्रबोध, कल्यान।
स्वामी लाल, दमोदर, पुहकर,सुन्दर हित उर आन॥८॥

हरीदास तुलाधार और जसवंत महामति आगर ।
रसिकदास,हरिकृष्ण दोऊ ये, प्रेम भक्ति के सागर॥६॥
मोहन माधुरीदास, द्वारिकादास परम अनुरागी ।
श्यामशाह तूमर कुल हित सों दंपति में मति पागी॥१०॥
श्रीहित-शरण भये अब सब हैं, केतहू जे जन ह्वै हैं ।
प्रेम-भक्ति अरु भाव-चाव सों, वृन्दावन निधि पै हैं॥११॥
रसिक-मंडली में या तन कौं, नीके ढ़ग लगावौ ।
दंपति यश गावौ हर्षावौ, हित सों रीझ रिझावौ॥१२॥
देवन कौं दुर्लभ नर-देही, सो स सहजहिं पाई ।
मन भाई निधि पाई सो क्यों, जान-बूझ बिसराई ॥१३॥
एक अहंता-ममता ये है, जग में अति दुखदाई ।
ये जब श्रीजी की ओर लगें तब, होत परम सुखदाई॥१४
मात-तात-सुत-दार देह में, मत अरुझै मति-मंदा ।
हितकिशोर ह्वै चकोर तू, लखि वृन्दावनचंदा ॥१५

श्रीहित चन्द्रलालजी महाराज कृत, हित रसिक
नामावलि समाप्त

❀ रसिक-नाम ध्वनि ❀

जय-जय राधावल्लभ, गुरु हरिवंश,
रंगीलौ राधावल्लभ, हितहरिवंश।
छबीलौ राधावल्लभ, प्यारौहरिवंश,
रसीलौ राधावल्लभ,जोयम हरिवंश।
श्रीवृन्दावनरामीरामा वल्लभनृपति प्रसंश।
हित के बस जस रस उर धरिये,करिये स्तुति भवतंश ॥१
वंशीवट, यमुना तट, धीर समीर पुलिन सुलपुञ्ज।
विहरत रंग रँगीलौ हित सौं, मंडल सेवाकुञ्ज ॥२॥
ललिता विशाखा चंपक चित्रा, तुङ्गविद्या रङ्गदेवी।
इन्दुलेखा सुदेवी सबही, सखी यूथ हित-सेवी ॥३॥
श्रीवनचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीगोपीनाथ, श्रीमोहन।
नाद-विंदु परिवार रंगीलौ, हित सौं नित छवि जोहन ॥४॥
नरवाहन, ध्रुवदास, व्यास श्रीसेवक, नागरिदास।
श्रीठल मोहन नवल छबीले, हित-चरणन की आस॥५॥
हरीदास नाहरमल गोविंद, अमल भुवन सुजान।
खरगसेन हरिवंशदास परमानंद के हित प्रान ॥६॥
गंगा, यमुना, करमठी, अरु भागमती ये भाई।
हित के चरण-शरण ह्वै क, इन दंपति-संपतिपाई॥७॥
दासचतुरभुज, कन्हर स्वामी, अरु प्रबोध, कल्याण।
स्वामी लाल, दमोदर, पुहकर,सुन्दर हित उर आन॥८॥

हरीदास तुलाधार और जसवत महामति नागर।
रसिकदास, हरिकृष्ण दोऊ ये, प्रेम-भक्ति के सागर॥९॥

मोहन माधुरीदास, द्वारिकादास परम अनुरागी।
श्यामशाह तूमर कुल हित सौं दंपति में मति पागी॥१०॥

श्रीहित-शरण भये अरु अब हैं, केऊ वे इन हूँ हैं।
प्रेम भक्ति अरु भाव-चाव सौं, वृन्दावन निधि दै हैं॥११॥

रसिक-मंडली में या तन कौं, नीके दृग [illegible]।
दंपति-यश गायौ हर्षायौ, हित सौं रीति निभायौ॥१२॥

वैष्णव कौं दुर्लभ नर-देही, मो तें सहजहि पाई।
मन भाई निधि पाई सो पायौ, ज्ञान-भूल बिसराई॥१३॥

एक अहंता-ममता ये हैं, जग में अति दुखदाई।
ये सब श्रीजी की ओर लगें तब, होत परम सुखदाई॥१४॥

मात-तात-सुत-दार देह में, सब प्रपंच [illegible]।
हितकिशोरकौ ह्वै चकोर तू, भजि वृन्दावनचन्द॥१५॥

श्रीहित पदनामावली [illegible]
नामावलि समाप्त

